श्रीकृष्ण-सन्देश

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके रंगमंचपर

नाट्य बैले सेन्टर, दिल्ली द्वारा प्रदर्शित कृष्ण-लीलाके कुछ दृश्य

श्रीकृष्ण सुदामाका स्वागत कर रहे हैं।
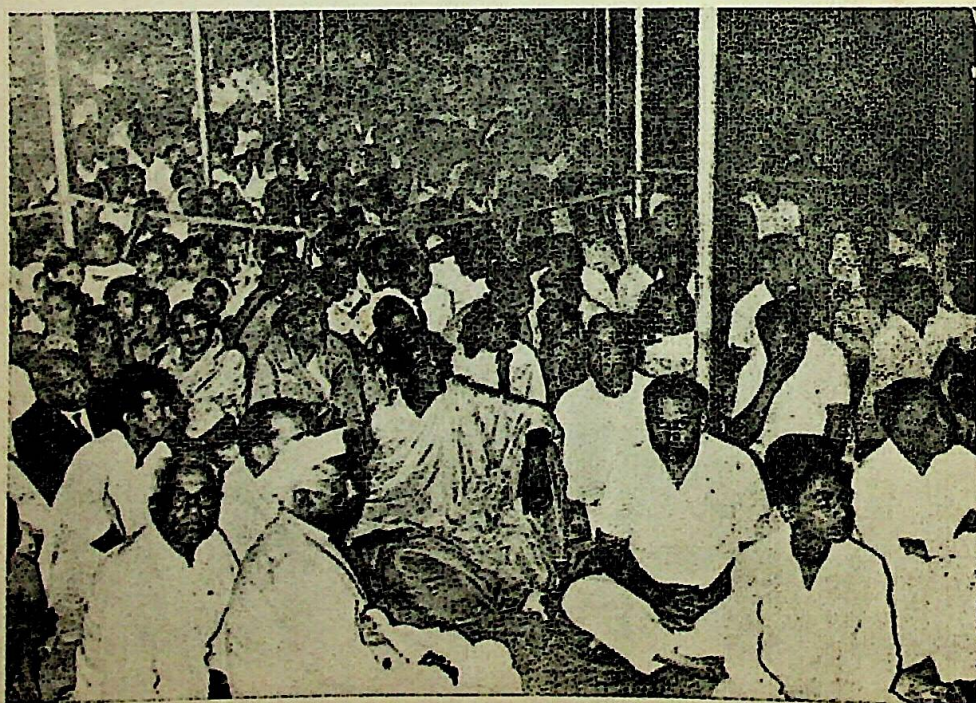
श्रीकृष्ण-लीला देखनेमें तन्मय अपार दर्शकोंकी झांकी।
भारत-विख्यात संत पागल बाबा मध्यमें दिखाई पड़ रहे हैं।

श्रीकृष्ण-सन्देश

[धर्म, अध्यात्म एवं संस्कृति प्रधान मासिक-पत्र]

वार्षिक शुल्क : ७) रु०
आजीवन शुल्क : १५१) रु०

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

अनुक्रमणिका

=०=

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान : अंजलिके पावन पुष्प

जिसे मैं कथाओंमें पढ़ा व सुना करता था, आज सौभाग्यवश उस जन्मभूतिके दर्शनोंकी प्राप्ति हुई। हृदय गद्गद् हो उठा। नेत्रोंमें वह घड़ी नाच सी उठी। यहाँके नव निर्माण आदिको देखकर मनमें यह निश्चय हो उठा है कि सौ वर्षके भीतर ही यहाँ वह कहावत चरितार्थ होजायेगी जो विद्वान्ने बहुत पूर्व लिखा है कि .... "सबै भूमि गोपालकी, यामें अटक कहाँ।" मैं स्वयं श्रीकृष्णसे यही प्रार्थना करता हूँ कि वह दिन शीघ्र आवे।

किशन महाराज

तबला-वादक, वाराणसी।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानमें आज पुनः दर्शनार्थ आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। भगवान् कृष्णकी इस जन्म भूमिके पुनरुत्थानकी जो पुनीत योजना कार्यान्वित होरही है उससे देश भरके आस्तिक हिन्दू समाजका गौरव बढ़ेगा। इस ऐतिहासिक योजनाकी सफलताके लिये हृदयसे कामना करता हूँ।

गजाधर सोमानी

कपूर महल, मेरीन ड्राइव, बम्बई

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका दर्शनकर अत्यन्त हर्ष हुआ,। यह अत्यन्त शान्ति प्रदान करनेवाला रमणीक स्थल है। भागवत-भवनका निर्माण अद्वितीय है। यहाँका प्रबन्ध और स्वच्छता विसेप उल्लेखनीय है।

डा० बाबूलाल अग्रवाल

अधीक्षक, सरोजिनी नायडू चिकित्सालय, आगरा

भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थलपर जो नव-निर्माण हुए हैं, और भगवान्के बाल-विग्रहकी स्थापना हुई है आज इन सबका दर्शन कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। हम इस स्थानका उत्तरोत्तर अभ्युदय चाहते हैं।

जगदीशप्रसाद भालोटिया

४ क्लाइव रोड, कलकत्ता-१

We have travelled a long way to visit the birth place of famous Lord Krishna, a thrilling experience.

LEE HOWS & FAMILY
ROSLYN, NEWYORK
U.S.A.

Entering this Holy Temple of Lord Krishna one feels peace of mind and too happy. May God give another chance of visiting this temple.

KRISHNA BIKRAM SHAH
GOPALDAS SHRESTHA
NUXAL BHAGAWATI DHOKA
KATHMANDU—NEPAL

The building of this magnificient area and its workers have really left an indelible mark on the mind. I am sure every visitor must be really and generally impressed with its splendid work. I am thankful to the management for this worthseeing and holy place.

BHAGWANDAS
ASMENA, AFRICA.

I was impressed by a visit to the Janmasthan of Lord Krishna. It appears excavations of the old site have brought to light, lots of hidden historical data. The entire premises is kept scrupulous clean and it is a pleasure to go round.

H. S. KOHE, I. P. S.
Cheif Security Officer
Central Rly., Bombay (V.T.)

All praise to those who conceived and constructed with pride of religion.

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

D. M. SAPATNEKAR
Spl. Judicial Magistrate
KALYAN (Rly.)
25 SHIVAJI NAGAR—POONA.

श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥

वर्ष ४ | मथुरा, अप्रैल १६६६ | अङ्क ६

शान्तिका पथ

तुम अपने मनमें विविध कामनाओंका जाल बुनना छोड़ दो, क्योंकि उस जालमें उलझा हुआ मनरूपी पंछी सदा अशान्त रहता है। बुद्धिको स्थिर एवं शान्त बनाओ। जब मनुष्य संपूर्ण मनोराज्यकी कामनाओंको त्याग देता है, भोगोंसे सुख पानेकी आशा और भावनाको सर्वथा भुलाकर अपने-आपमें ही संतुष्ट रहनेकी कला सीख लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर (शान्त) हो जाती है। दुख आते हों तो आवें, तुम अपने मनको उद्वेगमें न डालो, सुख प्राप्त हो तो भी उनके प्रति हृदयमें लोभ न पैदा होने दो। राग, भय और क्रोधसे दूर रहो। ये तस्कर मनोमन्दिरमें घुस आये हों तो इन्हें वहाँसे मार भगाओ। क्योंकि ये ही बुद्धिको स्थिर नहीं रहने देते हैं।

कहीं किसी भी विषयमें स्नेहातिरेक या आसक्ति न होने दो। यदि जीवनमें कभी शुभ या अशुभ परिणाम भोगने का अवसर आ जाय तो शुभका अभिनन्दन न करो और अशुभको काला झंडा न दिखाओ। जिसकी ऐसी अवस्था सध जाती है, उसीकी बुद्धि स्थिर समझी जाती है। स्थिरप्रज्ञकी एक दूसरी पहचान भी है, जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको सब ओर से समेट लेता है, उसी तरह तुम भी अपनी समस्त इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे बटोर लो। ऐसा होजाय तो अपनी बुद्धिको स्थिर समझो।

इस दिशामें जो कठिनाइयाँ हैं, उनपर भी दृष्टि रक्खो नहीं तो धोखा खा जाओगे। यह ठीक है कि उपवास करने या भोजन छोड़ देनेसे भी विषय निवृत्त हो जाते हैं, भूखेको विषयभोग नहीं सुहाते, तथापि विषयोंके प्रति रस या आस्वादकी जो भावना है, उनसे मिथ्या सुख लेनेकी जो आदत बन गयी है, वह भावना या आदत निराहार रहनेपर भी उस रसभावनाका चिन्तन नहीं छूटता। उसका चिन्तन तो तभी छूटता है, जब परमात्माका साक्षात्कार हो जाय, मनुष्य अपने मनको परमात्म-दर्शनके सुखसिन्धुमें निमग्नकर दें। तुम्हें यही करना होगा।

एक बातपर और ध्यान रक्खो, इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं, प्रमथनशील हैं। मनके सिन्धुको मथ डालनेके लिये मन्दराचलकी शक्ति रखती हैं। यदि तनिकसा भी प्रमाद या छिद्र दीख जाय तो ये मनको विषयोंकी ओर हठात् खींच ले जाती हैं। यत्नशील मनुष्यको भी ये धोखा दे जाती हैं, अतः इन्हें संयममें रक्खो। मुझे ही परमाराध्य परम प्राप्य मानकर मेरे ही चिन्तनमें संलग्न रहो। ऐसा करोगे तो इन्द्रियाँ अवश्य वशीभूत हो जायेंगी। इनके वशीभूत होते ही बुद्धि स्थिर हो जायगी।

विषय-चिन्तन सर्वनाशकी ओर जानेकी पहली सीढ़ी या पहला कदम है। अतः भूलकर भी उधर पांव न बढ़ाओ। विषय चिन्तनसे गिरावटका जो सिलसिला शुरू होता है, उसका क्रम इस प्रकार समझो। चिन्तनसे आसक्ति, आसक्तिसे कामना, कामनामें विघ्न पड़ा तो क्रोध, क्रोधसे संमोह (विवेकशून्यता) अवस्था और उससे स्मृतिभ्रंश होता है। जब स्मृति अपना संतुलन खोबैठती है तो बुद्धिनाश होता है और बुद्धिनाशसे सर्वनाशमें देर नहीं।

इस सर्वनाशसे बचो। राग-द्वेष छोड़ो। जीवन-निर्वाहकी दृष्टिसे सीमित मात्रामें विषयसेवन करो। फिर तो इन्द्रियाँ चेरी हो जायेंगी, मन किंकर बन जायगा और अन्तःकरण में प्रसाद (नैर्मल्य) छा जायगा। इतना होजाय तो बुद्धिके स्थिर होनेमें क्या विलम्ब ? तुम चेष्टा करो, कि जिस तरह सारे जल समुद्रमें स्वतः आकर मिल जाते हैं, उसी तरह तुम्हारे मनमें सारे मनोरथ, सम्पूर्ण काम विलीन हो जायँ। तभी तुम्हें शान्ति मिलेगी। कामलिप्सुको कभी शान्ति नहीं मिलती। कामना, ममता और अहंकारको तो छोड़ना ही पड़ेगा। इसके बिना शान्ति स्वप्न है—आकाश कुसुम है।

[गीता, द्वितीय अध्यायके आधारपर

उद्‌बोधन

★

माधव मास,–ऋतुओंका राजा वसन्त। नूतन नील परिधानसे सुसज्जित, विविध पुष्पमय अलंकरणोंसे समलंकृत प्रकृति पलाश-पुष्पोंका अरुण उत्तरीय ओढ़े, ऋतुपतिकी रानी-सी मनोरम छवि बिखेरती हुई माधवकी समाराधनामें संलग्न है। जन-जनके मानसमें नूतन उल्लास भर रही है। माधव आज साक्षात् माधव है। वृक्षावलियाँ ललिता हैं, विविध शाखाएं विशाखा हैं, अन्यान्य लतावल्लरियाँ असंख्य सहचरियाँ हैं। प्रकृतिके राज्यमें मानो अप्राकृत अमृत लोककी राधा रानी माधवी उतर आयी हैं। अमराइयाँ मञ्जरियों तथा फलोंकी माला भेंट करती हैं। प्रातः मधूकश्रेणियाँ माधवपर मानो राशि-राशि मोतियाँ लुटाती हैं। मालती मनोरम हारोंके उपहार प्रस्तुत करती है। मंद मलयानिलके संकेतोंपर प्रकृति नटी छूम छननन करती हुई नाच उठी है। भ्रमरावलियां बीन बजाती, पिकी पंचम स्वरसे पद गाती और गुलाब चटकारी देते हैं। कीलकरन्ध्रसे वंशीनाद मुखर हो उठा है।

उस स्वरलहरीमें एक संदेश है—जीव मात्रके लिये, जागृतके लिये। 'तुम सब लोग किसी औरके नहीं माधवके हो। इन्हींके बने रहो। जहाँ हो वहींसे अपना तन-मन गोविन्द के चारुचरणोंमें चढ़ा दो। एकमात्र इन्हींकी शरण ले लो। ये हृदयसे लगानेको उत्सुक हैं, इनकी बाहें फैली हैं, दौड़ पड़ो इनकी ओर, मिला दो–इनकी महासत्तामें अपना क्षुद्र अस्तित्व। सुनो-सुनो वे बुला रहे हैं। उनकी मुरलीका स्वर सुस्पष्ट सुनायी देता है। वे कहते हैं—'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। सब कुछ छोड़कर केवल मेरी शरणमें आजाओ।' अब क्या देर है। चलो इनके संकेतोंपर नाचो। यन्त्रीके हाथका यन्त्र बन जाओ। जीवनरथकी बागडोर इन्हींके हाथमें सौंप दो। अन्धकारसे निकलकर उस चिन्मय प्रकाशकी ओर बढ़ो। ये ही हमारी जीवनकी प्रत्येक दिशाको आलोकित और हर सांसको अनुप्राणित करेंगे।

—श्रीकृष्णकिङ्कर

कहाँ छिपे ब्रजराज

●

कहाँ छिपे ब्रजराज हमारे कहाँ छिपे ब्रजराज ?

(१)

लिये मिलन–उत्कण्ठा मनमें,
भटक रहीं गोपी वन-वनमें।
त्रास दे रहीं असुर वृत्तियाँ—
कौन बचावे लाज ?
कहाँ छिपे ब्रजराज ?

(२)

तुम्हें जिन्होंने करके धारण,
विषम वृष्टिका किया निवारण।
कहाँ गये गो ब्रज-रक्षक वे—
बोलो हे गिरिराज !
कहाँ छिपे ब्रजराज ?

(३)

सुख सुषमाके धाम कहाँ वे ?
रस-वर्षी घनश्याम कहाँ वे ?
विरह दवानल धधक उठा है—
उर वृन्दा में आज।
कहाँ छिपे ब्रजराज ?

(४)

कलियों ! मधुपावलियों ! बोलो
नन्दगाँव की गलियों ! बोलो
बरसानेकी खोर सांकरी !
तुम भी दो आवाज !
कहाँ छिपे ब्रजराज ?

(५)

वंशीवट ! तुम ही कुछ बोलो,
युग-युग की नीरवता खोलो,
कालिन्दी तट रास रचाने—
कब आते रसराज ?
कहाँ छिपे ब्रजराज ?

—'राम'

श्रीकृष्णका सदुपयोग

● श्री शङ्करपाणि

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त देहधारियोंके आत्मा हैं, वे ही सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मा हैं। वे अतीत कालमें थे, वर्तमान कालमें हैं और भविष्य कालमें भी रहेंगे। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें रहते हुए भी वे इनसे ऊपर हैं नित्य, शाश्वत, कालातीत। देश, काल वस्तुसे परे रहकर भी उनसे अभिन्न हैं। ज्ञानि-शिरोमणि शुक उन्हें सर्वात्मा बताते हैं, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें उन्हें ही परब्रह्मकी संज्ञा दी गयी है तथा श्रीमद्भगवद्गीतामें उन्हें "परब्रह्म परं धाम" कहा गया है। वे सर्वलोकमहेश्वर होकर भी सर्वभूतसुहृद् हैं। अज, अव्यात्मा तथा भूतेश्वर होकर भी एक देश-कालमें प्रकट होते हैं। वे ही ऋषि-मुनियों द्वारा बहुधा गीत हैं, विविध छन्दोंद्वारा उपवर्णित हैं। ब्रह्मसूत्र पदों द्वारा उन्हींके तत्वका निश्चय किया गया है। वे ही सर्वरूप हैं। उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। सूतमें मनकोंकी तरह उन्हींमें सारा प्रपञ्च पिरोया हुआ है। सागरकी तरंगोंकी भांति उन्हीं अनन्त अपार सच्चिदानन्द-सिन्धुमें बार-बार विश्व-सृष्टिमयी वीचिमालाएं उद्वेलित होती रहती हैं। वे क्या नहीं हैं ? कहां नहीं हैं और कब नहीं हैं इसका निरूपण कौन कर सकता है ? व सब हैं सर्वत्र हैं और सर्वदा हैं। तत्पदार्थ, त्वपदार्थ तथा मत्पदार्थके रूपमें केवल श्रीकृष्णतत्वका ही प्रतिपादन किया जाता है।

ऐसे श्रीकृष्णके होते हुए हमें किसी बातकी चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? क्या माता-पिताकी गोदमें समोद बैठा हुआ बालक कभी अपने योग-क्षेमकी चिन्ता करता है ? प्रपञ्चके अन्तर्वर्ती माता-पिताओंकी शक्ति सीमित है, अतः वे अपने बालकोंके योग-क्षेम का सम्यक् निर्वाह कर भी नहीं सकते, परन्तु त्रिगुणमय भावोंसे परे विराजमान श्रीकृष्ण, जो सम्पूर्ण जगतको एक अंशमें धारण करके स्थित हैं, क्या नहीं कर सकते हैं ? वे योग-क्षेमके सम्पादनकी व्यवस्था ही नहीं करते, स्वयं ढोकर उसे अपने अनन्य उपासक के पास पहुंचाते हैं। गीतामें भगवान्ने श्रीमुखसे यह घोषणा की है। अनेकानेक भगवदा-

श्रित संतोंने भी इस रहस्यका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। श्रीकृष्ण अनन्यचित्तसे उनका चिन्तन करने वाले भक्तको सदा सभी अवस्थाओंमें सुलभ हैं।

भक्तवत्सल श्रीकृष्ण परम उदार हैं। संकीर्णता तो उन्हें छू ही नहीं सकी है। किसी भी भावसे जो उनके संमुख आया उनके चिन्तन-स्मरणमें लगा, उसका बेडा पार हो गया। बाल-घातिनी क्रूरहृदया पूतना स्तनोंमें कालकूट विष लगा कर श्रीकृष्णको मारने आई थी, परन्तु स्तनका स्पर्श कराने मात्रसे श्रीकृष्णने उसे माता मान लिया और वह सद्‌गति प्रदान की जो बड़े-बड़े योगियोंको भी दुर्लभ है। कैसी दयालुता है। शुक मुनि रीझ गये इस दयालुता पर और सदाके लिए उनके ऊपर निछावर हो गये। सहसा बोल उठे—श्रीकृष्णसे बढ़कर कौन दयालु है, जिसकी हम शरण लें। 'कं वा दयालुं शरणं व्रजेम?' कंसकी त्रिवक्रा दासी कुब्जाने थोड़ा-सा अङ्गराग अर्पण कर दिया, और वह श्यामसुन्दरके परम अनुरागका पात्र बन गयी। जिसने एक दिया, असंख्य पाया। मालीने एक हारके साथ उनके ऊपर जीवन हार दिया और उन्होंने उसके लिए परमधामका द्वार उन्मुक्त कर दिया। जिसने दुत्कारा उसका भी उद्धार किये बिना वे न रह सके। रजक, कुवलयापीड, अरिष्ट, चाणूर, कंस सब एक से एक बढ़कर दुष्ट, धर्मद्रोही जनपीड़क एवं क्रूरकर्मा थे, किन्तु श्रीकृष्णने उनके द्वेषको भी भजनका एक प्रकार माना और उन सबको आत्मसात् कर लिया।

ऐसे सर्वभूतसुहृदका सौहार्द किसे अपनी ओर नहीं खींचेगा? जो श्रीकृष्णकी ओर आकृष्ट नहीं हुआ, वह हृदय नहीं है, पत्थर है। जो श्रीकृष्णके आश्रित है, उसे निर्भय और निश्चिन्त हो जाना चाहिए। 'द्वितीयाद् वै भयं भवति।' भय तो दूसरेसे होता है, जब श्रीकृष्णके सिवा दूसरी किसी वस्तुकी सत्ता ही नहीं है और श्रीकृष्ण सबसे बढ़कर अपने हैं, आत्मा हैं, परम प्रेमास्पद हैं, तब भय क्यों हो? यदि भय है तो हमने किसी अन्य भयदायक सत्व की कल्पना करली है। हमने श्रीकृष्णको नहीं जाना, उनका विश्वास नहीं किया और उन्हें ठीकसे नहीं समझा है। श्रीकृष्णके आश्रितकी सबसे पहली पहचान है निर्भयता, जो दैवी सम्पत्तिका प्रथम गुण है। चिन्ता भय से होती है। जब भयका कोई उद्‌गमस्थान नहीं, तब चिन्ता भी क्यों हो? निर्भयता और निश्चिन्तताके साथ-साथ दैवी सम्पत्तिके समस्त गुणोंका विकास श्रीकृष्ण-भक्तमें अनिवार्य है। श्रीकृष्ण कहते हैं यह जगत् अनित्य है असुख है, यदि नित्य सुख चाहते हो तो मेरा भजन करो। जगत्‌को श्रीकृष्णसे भिन्न न देखो, श्रीकृष्णमय समझो। "वासुदेवः सर्वम्" इस भावनाके सिन्धुमें निरन्तर तरङ्गायमान होते रहो। सारे पाप-ताप शोक-दुःख दूर हो जायेंगे। श्रीकृष्णके स्वरूपका ध्यान, उनके चारु चरित्रोंका चिन्तन उनके दिव्य उपदेशोंका श्रवण-मनन तथा उनके भावुक भक्तोंका संग यह हमारे जीवनका महान् व्रत होना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव हो सका तो जीवनकी प्रत्येक दिशामें, प्रत्येक बेलामें हम नूतन प्रकाश पाते रहेंगे। कभी-कभी भी अवसाद-विषादके लिए स्थान नहीं रह सकेगा। हम धन्य-धन्य हो जायेंगे; और यही श्रीकृष्णका अपने जीवनमें महान् सदुपयोग समझा जायेगा।

श्रीकृष्ण-तत्व

—श्री पं० बदरीनाथ शुक्ल न्यायवेदान्ताचार्य—
[अध्यक्ष : न्याय विभाग, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय]

भारतवर्ष संसारके सभ्य और शिक्षित देशोंमें मूर्धन्य है, यहाँकि मनीषी साधकोंने चिरकालकी साधनाके फलस्वरूप यह सिद्धान्त निर्धारित किया था कि इस संसारका प्रादुर्भाव जिस मूल तत्त्वसे हुआ है वह शाश्वत, स्वप्रकाश, आनन्द रूप है, वह सत्यं शिवं सुन्दरम् है, वही ब्रह्म है, वही परमात्मा है, वही भगवान् है, तत्त्वदर्शी महर्षियोंकी दृष्टिमें वही अद्वय ज्ञान है, श्रीमद्भागवतमें इस सिद्धान्तको यह कह कर प्रकट किया गया है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज् ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

जगत्का मूलकारण यह सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही श्रीकृष्ण हैं, या यों कहिये कि वृन्दावनविहारी गोपीजनवल्लभ मुरली मनोहर नन्दनन्दन यशोदामनोरञ्जन राधारमण श्रीकृष्ण ही जगत्के उत्पादक सच्चिदानन्द परब्रह्म हैं ।

श्रीकृष्णके गवेषक साधकोंने ठीक ही कहा है—

निगमतरोः प्रतिशाखं मृगितं मृगितं परब्रह्म ।
मिलितमिदानीमङ्के गोकुलपङ्केरुहाक्षीणाम् ॥

तत्त्वान्वेषी मनीषी मुनिजन वेदवृक्षकी डाल-डालपर जिस परब्रह्मको ढूंढ़नेका अथक प्रयास करते रहे वह द्वापर युगमें गोकुलकी नलिननयनी नारियोंकी गोदमें दिखाई दिया ।

जगत्के इस मूलतत्त्वको अधिगत करना ही मानवका चरम पुरुषार्थ है। मानव इस मूलतत्त्वके आनन्दघन स्वरूपका रसास्वाद प्राप्त कर सके, इस उद्देश्यसे ही इस जगत्की रचना हुई है, यह तथ्य श्रीमद्भागवतके इस पद्यमें स्पष्ट रूपसे अंकित किया गया हैः—

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या
वृक्षान् सरीसृपमृगान् खगदंशमत्स्यान् ॥
तैस्तैरतुष्टहृदयो मनुजं विधाय
ब्रह्मावबोधधिषणं मुदमाप देवः ॥

किन्तु प्रश्न यह है कि श्रीकृष्णको अधिगत करने, आत्मसात करने, अपने विभाजक व्यक्तित्वको विलीय कर श्रीकृष्णके तादात्म्यको अर्पित करनेका उपाय क्या है? इस प्रश्नका उत्तर इस दिशामें प्रयत्न करने वाले भक्तजनोंने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
तस्य मूल्यमिह लौल्यमेकलं काम्यकोटि सुकृतैरवाप्यते ॥

आशय यह है कि शास्त्रीय सात्त्विक सत्कर्मोंके अभ्याससे मनकी मलिनताको दूर कर संसारके सर्वविध सौख्यको श्रीकृष्ण सुखका वैद्युत आभास मान उस आनन्द समुद्रमें अवगाहनकी उत्कट उत्कंठा अर्जित करनी चाहिये, उसके लिये अपार आतुरताका सम्पादन करना चाहिये, मानवके इस प्रयाससे उसकी ओर श्रीकृष्णका स्वयं झुकाव हो जाता है, फलस्वरूप वह अपने आपको स्वयं मानवके लिये सुलभकर देते हैं। उनकी कृपा से मानव धन्य और कृतार्थ हो जाता है। ऐसे मनुष्यकी गति और प्रवृत्ति लोकोन्नतिकी साधिका और भगवत्तत्त्वकी प्रापिका बन जाती है।

—✦—

व्यक्ति चाहे कितनीही समाधि लगा ले, योगमें स्थित हो जाय और चाहे कितना ही धर्मनिष्ठ हो जाय, जब तक भगवदाकार वृत्तिका उदय नहीं होता, तबतक जीवनमें सुख-शान्ति नहीं आ सकती।

—✦—

श्रीकृष्णके द्वारा जगायी गयी समन्वयात्मक धर्मकी ज्योतिपर शोधपूर्ण विचार—

श्रीकृष्ण की समन्वयात्मिका दृष्टि—

श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी

परतत्त्वके साक्षात्कारके लिये कर्मयोग और ज्ञानयोगके समान भक्तियोग भी भारतीय धरतीकी ही उपज है तथा ईसाके जन्मसे बहुत पूर्व ही यह मार्ग यहाँ विकसित हो चुका था, इस सम्वन्धमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है, अतः अब कुछ लिखना पिष्टपेषण मात्र होगा। वैदिक कर्मकांडसे, जिसकी कि प्रतिष्ठा मीमांसा दर्शनमें हुई, कर्मयोगका और औपनिषद दर्शनसे ज्ञानयोगका विकास हुआ, यह निर्विवाद मान्यता है। हमारे विचारसे भक्तियोगका विकास आगमिक दर्शनसे हुआ। वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें भक्तिप्रतिपादक वाक्योंको ढूंढ़नेका प्रयत्न किया जाता है इसका आधार उनमें प्रतिपादित प्रतीकोपासना आदि हैं।

अति प्राचीनकालमें यहाँ पर भक्तिमार्गकी धारा प्रवाहित थी, इसका मूक सन्देश हमको मोहन जोदड़ो और हड़प्पा संस्कृतिके अवशेषोंसे सुननेको मिलता है। इसी धारा में आगमिक दर्शनका विकास हुआ और वैदिक धारापर भी इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। अथर्ववेदमें तो इसका स्पष्ट प्रभाव भी प्रतीत होता है। आज हमको कर्म, ज्ञान और भक्ति में कोई विरोधाभास प्रतीत नहीं होता, किन्तु किसी समय भारतवर्षके प्रबुद्ध जनोंके समक्ष आज की जाति, सम्प्रदाय और भाषागत समस्याओंके समान यह एक असमाधेय समस्याके रूपमें उपस्थित था। इसका समाधान समन्वयाचार्य श्रीकृष्णने गीतामें किया था।

'सर्वोपनिषदो गावः' इत्यादि प्रमाणों से और कठादि उपनिषदोंके गीतामें उद्धृत वाक्योंसे भी यह प्रतीत होता है कि गीता औपनिषद परम्पराका ग्रंथ है, किन्तु यह मुख्यतः भक्ति, प्रपत्ति, शरणागतिका प्रतिपादक ग्रन्थ हैं, जिसमें कि कर्म और ज्ञानका भी भक्ति में समन्वय किया गया है। जर्मन विद्वान् प्रोफेसर गार्वेने और स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने इस मतका संयुक्तिक प्रतिपादन किया है। गीताके चतुर्थ अध्यायके आरंभके श्लोकोंमें गीतोपदिष्ट योगकी जो परम्परा दी है, वह महाभारत शान्तिपर्वके नारायणीयोपाख्यानमें

वर्णित पांचरात्र परम्पराके समान ही है। शतपथ ब्राह्मणमें एक पांचरात्र सत्रका उल्लेख है। छान्दोग्य उपनिषद्के आंगिरसके शिष्य देवकीपुत्र कृष्णके उपदेश हमको वेसनगरके गरुड़ध्वज शिलालेख में भी देखने को मिलते हैं। शिवभक्तिकी परंपरामें जैसे पाशुपत आदि शैव दर्शनोंका विकास हुआ, उसी प्रकार विष्णुभक्ति परंपरामें पांचरात्र मतकी प्रतिष्ठा अतिप्राचीन कालमें हो चुकी थी। प्रपत्ति या शरणागति इसका मुख्य उपदेश था, जिसमें कि अहम्भावको निःशेष कर मनुष्य सर्वतोभावेन अपनेको प्रभुके चरणोंमें अर्पित कर देता है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (१८।६६)

गीताके इस श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने इसी शरणागतिका उपदेश दिया है। गीतामें कर्म, ज्ञान और भक्तिका जो समन्वय किया है, उसका समकालीन या परवर्ती पूरे साहित्य पर प्रभाव पड़ा है। रामायण, महाभारत, मनुस्मृति और पुराण साहित्य इसी समन्वयात्मिका दृष्टिके जीते जागते प्रमाण हैं। यह जनताका धर्म था। स्त्री, वैश्य और शूद्रको भी इसमें समान अधिकार प्राप्त था।

जैन और बौद्ध धर्मके उदयके कुछ समय बाद यहाँका धार्मिक वातावरण पुनः कलहपूर्ण हो गया। इससे देशकी रक्षा गीतामें श्रीकृष्णके द्वारा परिदर्शित समन्वयात्मिका दृष्टिने ही की। प्रियदर्शी अशोक और सम्राट् कनिष्टकी दृष्टि सब धर्मोंके प्रति सहिष्णुता की थी। भारतीय इतिहासके स्वर्णयुगमें विशाल पौराणिक साहित्यकी सृष्टि हुई। इसमें प्रधानतः वैदिक और आगमिक धर्मके आधार पर जैन और बौद्ध धर्मके समन्वयका भी प्रयत्न किया गया। भागवतमें २४ अवतारोंमें ऋषभदेव और बुद्धकी भी गणनाकी गयी है। विष्णुके दश अवतारोंमें बुद्धको स्थान देना और संकल्प-वाक्यमें 'बौद्धावतारे' का हिमालयसे कन्याकुमारी तक निर्विवाद रूपसे स्थान होना श्रीकृष्णकी उस समन्वयात्मिका दृष्टिका ही फल था।

जैन और बौद्ध धर्मका विकास जैन-धर्मके रूपमें हुआ था। इसके विपरीत वैदिक-धर्म केवल उच्च वर्गको अधिकार देता था। जनतामें इसका टिकना कठिन होता, यदि आगमिक धर्मके साथ विशेषतया पांचरात्र दृष्टिकोणके साथ इसने समझौता न किया होता। भारतीय जनमानसमें वैष्णव धर्मको यह ऊँचा स्थान इसी समन्वयके कारण मिला। इसको न हम वैदिक ही कह सकते हैं और न आगमिक ही, आजका भारतीय धर्म उभय संस्कृतियोंसे ही नहीं जैन और बौद्ध सस्कृतिकी भी उदात्त भावनाओंसे अनुप्राणित है।

शंकराचार्यने इस धर्मको शुद्ध वैदिक रूप देनेका और जनतामें ज्ञान मार्गकी प्रतिष्ठाका महनीय प्रयास किया, किन्तु उनको भी परवश होकर कहना पड़ा—'सत्यपि

भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्' शुष्क ज्ञान जनताका धर्म नहीं हो सकता था। जनताको ऐसा धर्म चाहिये था जो कि उनके हृदयको छू सके। भक्ति-मार्ग ही उनकी इस आकांक्षाकी पूर्ति कर सकता था। इसके लिये यह भी आवश्यक था कि इसका उपदेश जनताकी भाषामें हो। बौद्ध धर्मका प्रथम उपदेश पालि-भाषामें और जैन धर्म का प्राकृत भाषामें हुआ था। धीरे-धीरे इन धर्मोंका जनतासे सम्बन्ध हटने लगा और विद्वानोंमें परस्पर शास्त्रार्थ एवं वाद-विवादकी पूर्तिके लिये संस्कृतमें ग्रंथोंकी रचना होने लगी। इस बातको तत्कालीन सन्तोंने समझा और जनताकी आकांक्षाकी पूर्तिके लिये उन्होंने जनभाषामें ही अपने मनोभावोंको व्यक्त करना आवश्यक माना। इस प्रकार के सन्तोंमें तमिल आलवारोंका बहुत ऊंचा स्थान है।

तमिल आलवारोंकी भक्तिभावपूर्ण रचनाओंसे पाठक पूर्णतया परिचित होंगे। इनका प्रेरणा स्रोत पांचरात्र आगम और पौराणिक वाङ्मय था। पांचरात्र आगमकी परवर्ती संहितायें दो मुख्य विभागोंमें बंट गयी थी। इनमेंसे एकमें श्रीकृष्ण परब्रह्मके रूपमें वर्णित हैं और दूसरीमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम। इन्हींके आधारपर इन आल-वारोंमें भी मुख्य दो विभाग हैं। कुछ श्रीकृष्णके उपासक हैं और अन्य श्रीरामके। बौद्ध और जैन परम्पराके समान तमिल आलवारोंकी परम्परामें भी नाथमुनि, यामुन और रामानुज जैसे आचार्य हुये, जिन्होंने कि जनभाषाका सहारा न लेकर संस्कृतमें ग्रंथों की रचना की। लेकिन रामानुजके शिष्य दो भागोंमें बँट गये। कुछ ने आचार्योंके ग्रन्थों पर संस्कृत भाषामें टीका टिप्पणी करना अंगीकार किया, लेकिन अन्य मनस्वी शिष्योंने आलवारोंके पथका अनुवर्तन कर तमिल भाषामें ही रचना करते हुये जनतासे सम्पर्क बनाये रखा। रामानुजके प्रसिद्ध शिष्य कूरेशकी इस परम्परामें स्वामी राघवानन्दके शिष्य स्वामी रामानन्दका प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने कि पूरे उत्तर भारत को मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी भक्तिसे आप्लावित कर दिया। इस पृष्ठभूमिमें स्वामी रामानन्दका अध्ययन होना अभी बाकी है। इसके अभावमें स्वामी रामानन्दका ठीक मूल्यांकन नहीं हो सकता और उनपर कुछ अनुचित आक्षेप कर दिये जाते हैं।

पांचरात्र आगम और तमिल आलवारोंकी रामधाराका विकास जनभाषामें जैसे उत्तर भारतमें काशीमें आकर हुआ, उसी प्रकार कृष्णधाराका विकास मथुरा-वृन्दावनमें हुआ। वहाँ से वह बंगालमें पहुँची। महाराष्ट्र और गुजरात होकर ही इनका उत्तर भारतमें प्रवेश हुआ था। कृष्णधाराके साथ हम भागवत पुराणको भुला नहीं सकते। वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुयायियोंपर इसका अक्षुण्ण प्रभाव है ही, निंबार्काचार्य और मध्वाचार्य भी इसके प्रभावसे अछूते नहीं रहे थे। वर्तमान समयके महान् सन्त-महात्मा गाँधी भी इसी परम्परासे अनुप्राणित थे। गुजरातके सन्त कवि नरसी मेहताका "वैष्णवजन तो तैने कहिये' इनका प्रिय भजन था। आजके विरोधाभासोंमें समन्वय स्थापित करनेमें ही इनको अपने जीवनतककी आहुति देनी पड़ी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कर्म और ज्ञानमार्गका भक्तिसे समन्वय करके लोकनायक श्रीकृष्णने जिस समन्वयात्मक धर्मकी ज्योति जगायी थी, सुदीर्घकाल और परिस्थिजन्य झंझावातोंसे टक्कर लेती हुई वही ज्योति आन्तरिक और बाह्य आक्रमणोंसे त्रस्त भारतीय आत्माको अब तक प्रकाश देती रही है और भविष्यमें भी यही समन्वयात्मिका दृष्टि आज भारतमें वर्गवाद, भाषावाद और प्रांतीयतावादसे उत्पन्न विभीषिकाको तथा आधुनिक सभ्य जगत्‌में व्याप्त स्वार्थपरता, संकीर्णता और वैमनस्यको दूर करनेका सामर्थ्य रखती है। वह महान् विभूति समय रहते हममें इस दृष्टिका पुनः उन्मेष करें।

श्रीकृष्णसे उपलब्धि

देवोंको दुलार वसुधाको भारहार मिला,
संसृति असारको प्रसार सौख्य सारका,
साधिका कुमारियोंको नन्दका कुमार पति—
राधिकाको प्यार मिला प्यारे प्राणाधारका।
कूबरीको रूप मिला, भूप मिला द्वारकाको,
कंससे नृशंसको भी मार्ग मुक्तिद्वारका,
नन्दको आनन्द जसुदाको मिला नन्दन
अकथ अमंद लाभ कृष्ण-अवतारका॥

श्रीकृष्ण और धर्म

—पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तशास्त्री, साहित्याचार्य

भगवान् श्रीकृष्णका अवतार धर्मकी रक्षा और स्थापनाके लिए हुआ था। धर्म उनका स्वरूप है। उन्होंने जीवन भर जो कुछ किया, वह सब धर्मकी रक्षा और स्थापना का ही उपक्रम या साधन था। उनका सारा जीवन ही धर्ममय था, अतः उनके किसी विशेषधर्मको वतलाना कठिन है। जिनके जीवनके अनन्त कार्य, धर्मकी रक्षासे ही सम्बन्ध रखनेवाले हों, उनके धार्मिक कृत्यों और अनुभवोंको गिनकर बताना दुस्साहस है।

भगवान् श्रीकृष्णके धर्मको समझने या जाननेके लिए दो ही साधन हैं—उनके आचरण और उपदेश। उन्होंने अपने जीवनमें किन-किन धर्मोंका आचरण किया तथा दूसरोंके लिए किस किस धर्मका उपदेश किया? इन दोनों बातोंपर विचार करनेसे हमें उनके धर्मके विषयमें बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है।

धर्मका निर्णय—

सबसे पहले यह प्रश्न सामने आता है कि धर्मका निर्णय किसके आधारपर किया जाय? ग्रंथके आधारपर या व्यक्तिके? इस विषयमें श्रीकृष्णने बहुत स्पष्ट शब्दोंमें अपनी सम्मति दी है। उनका कहना है कि कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यके निर्णयमें शास्त्र ही सबसे श्रेष्ठ प्रमाण है—"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितो।" कब, किस अवस्थामें किसके लिए कौन-सा कर्तव्य उचित एवं हितकर है तथा कौन-सा कार्य नितान्त अनुचित है, इसका विशेष ज्ञान शास्त्रसे हो सकता है। शास्त्र भगवान्की ही वाणी है—"श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञे।" वे ही सदा एक रूपमें सुलभ हो सकते हैं, उनमें राग-द्वेष या पक्षपातवश कोई बात नहीं कही गयी है। सम्पूर्ण जगत्-के कल्याणको ही दृष्टिमें रखकर कर्तव्याकर्तव्य का विवेचन किया गया है। अतः शास्त्र ही सबके लिए प्रमाण हैं। जो शास्त्रविधिका

उल्लंघन करके मनमाना वर्ताव करता है, उसे न तो सिद्धि मिलती है न सुख प्राप्त होता है और न परमगति ही सुलभ होती है। यदि शास्त्रके रहस्यको समझनेमें कठिनाई हो तो शास्त्रवेत्ता महात्मा पुरुषोंसे विनयपूर्वक पूछकर उनके बताये अनुसार आचरण उचित है— "उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।' महाजनो येन गतः स पन्थाः—पहलेके महात्मा पुरुष जिस मार्गसे गये हैं, वही धर्मका मार्ग है—ऐसा कहकर महाभारतमें भी इसी मतकी पुष्टि कीगयी है। श्रुतिमें भी कहा है—"यदि तुझे कर्म या आचारके विषयमें कोई सन्देह उपस्थित हो तो वहां जो विचारशील, कर्ममें नियुक्त, आयुक्त (स्वेच्छासे कर्ममें संलग्न) सरलस्वभाववाले धर्माभिलाषी ब्राह्मण इस विषयमें जैसा बर्तावकरे, वैसाही तू भी कर।" अतः भगवान् श्रीकृष्णकी दृष्टिमें शास्त्र तथा शास्त्रज्ञ महात्मापुरुष ही धर्मनिर्णयके अधिकारी हैं, इनमें भी प्रधानता शास्त्रकी ही है। व्यक्ति तो आज है कल नहीं रहेगा। इसके सिवा विभिन्न देश, काल और परिस्थितिका प्रभाव पड़नेसे व्यक्तिके विचार किसी एक निश्चय पर दृढ़ नहीं रह सकते, अतः शास्त्रकी प्रामाणिकता सर्वमान्य है।

धर्मका स्वरूप—

जब शास्त्रही धर्मका निर्णायक है तो शास्त्रमें जिन-जिन धर्मोंका उपदेश हुआ है, वे सभी श्रीकृष्णके ही धर्म हैं। इस दृष्टिसे श्रुति-स्मृति प्रतिपादित सभी धर्मोंको श्रीकृष्ण का धर्म कहा जा सकता है। शास्त्रोंमें धर्मका लक्षण इस प्रकार किया गया है— "धारणाद् धर्म इत्याहुधर्मो धारयते प्रजाः।" धर्म प्रजाको धारण करता है, धारण करने के कारण ही उसे धर्म कहते हैं। धर्मका ठीक ऐसा ही लक्षण भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने श्रीमुखसे बतलाया है। धर्म साधारण रीति से दो प्रकारके माने गये हैं— सामान्य धर्म और विशेष धर्म। सामान्य धर्म वह है, जिसका पालन मनुष्यमात्र करसके। इसका दूसरा नाम मानवधर्म भी है। विशेष धर्मके अनेक भेद हैं—वर्णधर्म, आश्रमधर्म, नारीधर्म, पुत्रधर्म, भ्रातृधर्म, मित्रधर्म तथा शिष्टधर्म आदि। उक्त सभी धर्म यदि सकाम भावसे किये जांय तो लौकिक अभ्युदयके साधक होते हैं और यदि निष्काम भाव तथा भगवत् अर्पण बुद्धिसे इनका अनुष्ठान किया जाय तो इनसे निःश्रेयस (मोक्षसुख या भगवत्प्राप्ति) की सिद्धि होती है इनके सिवा एक साधनधर्म भी होता है, जो केवल परमार्थ के उद्देश्यसे किया जाता है, जैसे यम-नियमोंका पालन, नामजप, भगवद्भजन आदि। भगवान् श्रीकृष्णने इन सभी धर्मोंका प्रतिपादन किया है और किसीका उपदेश द्वारा तथा किसीका आचरण द्वारा अनुमोदन किया है।

सामान्यधर्म—

शास्त्रमें कहीं सामान्यधर्म के आठ लक्षण बताये गये हैं, कहीं दस और कहीं तीस। किन्तु भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें दैवीसंपत्ति, ज्ञान तथा विविधतपके नामसे उन सभी धर्मों

का बड़ी सुन्दरताके साथ उपदेश कर दिया है। गीता अध्याय १६, श्लोक १ से ३ तक दैवी-सम्पत्तिका इस प्रकार वर्णन किया गया है—निर्भयता, अन्तःकरणकी शुद्धि, ज्ञान-योगमें स्थिति, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, चुगली न करना, जीवों पर दया, इन्द्रियोंका विषयोंकी ओर न भटकना, सरलता, लज्जा तथा चचलताका अभाव। इनमें से यज्ञ वैदिक कर्म है, दूसरोंको सुख पहुँचानेके लिए जो भी चेष्टा होती है, उसे यज्ञ कहते हैं, अतः सामान्य धर्ममें इसकी गणना उचित ही है। स्वाध्यायका अर्थ उत्तम विचारवाली पुस्तकोंका अनुशीलन है। इसी प्रकार अध्याय १३ श्लोक ७ से ११ तक 'ज्ञान' का इस प्रकार निरूपण किया गया है—अमानित्व (अपना बड़प्पन न प्रकट करना), अदम्भित्व (ढोंग या दिखाने के लिए धर्म न करना), अहिंसा (मन, वाणी और शरीरसे किसी भी जीवको कष्ट न पहुँचाना), शान्ति (प्रत्येक स्थितिमें एकरस रहना), आर्जव (सरलता), आचार्योपासना (गुरुकी सेवा), शौच (शरीर और मनकी शुद्धि), स्थैर्य (बुद्धिकी स्थिरता), आत्मविनिग्रह (शरीरकी स्वाभाविक प्रवृत्तिको रोककर उसे सन्मार्गमें लगाना), विषयोंमें वैराग्य, अहंकारका अभाव, जन्म-मृत्यु-जरा और व्याधि में दुःख रूपी दोषको देखना, आसक्तिका अभाव, स्त्री-पुत्र और गृह आदिमें ममता मूलक दुःखोंका अनुभव न करना, प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सदा समानचित्त रहना, भगवान् श्रीकृष्णमें अनन्य भक्तिका होना, एकान्त पवित्र एवं भयशून्य स्थानमें रहना, प्राकृत जन-समुदायमें आसक्त न होना, अध्यात्म-ज्ञानमें निरन्तर स्थित रहना और तत्त्वज्ञानके फलरूप मोक्षका विचार करना। ये सभी सामान्यधर्म तो हैं हीं, साधनधर्म भी हैं। १८ वें अध्यायमें श्लोक १४ से १६ तक त्रिविध तपका वर्णन किया गया है। त्रिविध तप ये हैं—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। देवता, ब्राह्मण, गुरु और विद्वानों का पूजन, आदरसत्कार, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्यका पालन तथा किसीभी जीवका अहित न करना शारीरिक तप है। ऐसी बात मुँहसे निकालना जिसे सुनकर किसी को उद्वेग न हो, जो सत्य, प्रिय और परिणाममें हित करनेवाली हो, साथ ही स्वाध्यायका अभ्यास करना—यह वाणीका तप है। मनका निर्विकार, स्वच्छ एव प्रसन्न रहना, सौम्यता (शान्तभाव), मन और वाणीका संयम, मनको वशमें रखना तथा भावशुद्धि (दूसरोंकेसाथ व्यवहार करनेमें छल-कपटसे रहित होना), यह मानसिक तप है।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट सामान्य धर्मोंका संक्षेपमें दिग्दर्शन मात्र कराया गया। विस्तारभयसे यहां इनकी विशेष व्याख्या नहीं की गई है। गीताके शिवा महाभारतमें अन्यत्र भी श्रीकृष्णके भांति-भांतिके संदेश और उपदेश मिलते हैं। अन्यान्य पुराणों तथा उपपुराणोंमें भी श्रीकृष्णके संदेश उपलब्ध होते हैं।

कुछ महानुभाव भगवान् श्रीकृष्णको हिंसानीतिका समर्थक बतलाया करते हैं। उनका कहना है कि श्रीकृष्णके देखते-देखते महाभारत हो गया, वे चाहते तो रोक सकते थे। उन्होंने रोका नहीं, बल्कि उसमें सहयोग दिया।

जो लोग ऐसा समझते हैं, वे भ्रममें हैं। श्रीकृष्णने गीतामें अहिंसा धर्मका बारम्बार उपदेश किया है। महाभारतके युद्धको रोकनेके लिए भी उन्होंने पूरी चेष्टाकी। स्वयं पाण्डवोंके राजदूत बनकर सन्धिका प्रस्ताव लेकर वे दुर्योधनके पास गये थे, किन्तु उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया गया, इतना ही नहीं, उन्हें छलसे कैद करनेकी भी चेष्टाकी गयी। भगवान् श्रीकृष्ण किसी लकीरके फकीर नहीं थे, वे प्रत्येक धर्मको बुद्धिसे परखा करते थे। कौरवोंके साथ अहिंसा-नीतिका प्रयोग असफल हो चुका था। पाण्डव युद्धसे बचनेकेलिए तेरह वर्षों तक जंगलोंमें भटकते रहे, फिर भी उनकी न्याययुक्त मांग ठुकरा दी गयी। वे पांच गांव लेकर ही संतोष करना चाहते थे। पर दूसरी ओर से सुईकी नोंकके बराबर भूमि भी बिना युद्ध किये देनेको कोई तैयार न था, पाण्डव क्षत्रिय थे, राष्ट्र और धर्मके कट्टर पुजारी, वे कब तक कायरोंकी तरह भीख मांगते और शत्रुकी ललकार सुनकर भी चुप बैठते। युद्ध अवश्यम्भावी था और हुआ, श्रीकृष्ण भी उसे रोक न सके, रोकना उचित भी नहीं समझते थे। जब घाव पक जाता है तो आपरेशन से ही अच्छा होता है, उसे दवा देकर भीतर दवा देनेकी चेष्टा और भी भयंकर होती है। अधर्मसे कौरवोंकी आयु समाप्त हो चुकी थी, कालकी दृष्टि उनपर पड़ चुकी थी। भगवान्ने पहले ही अर्जुनसे कह दिया था— 'ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे।' तुम नहीं मारोगे तब भी ये जीवित नहीं रहेंगे।

श्रीकृष्णने अपने जीवनमें जिन असुर स्वभावके राजाओंका बध किया, उन्हें किसी उपायसे ठीक राह पर लाना असंभव था। उन्हें मारकर वे उनका राज्य नहीं लेना चाहते थे. राज्यका अधिकारतो उनके अधिकारियोंको देते थे। श्रीकृष्ण पक्के अहिंसावादी थे, उन्होंने व्यापक हिंसा रोकनेकेलिए हिंसाको ही धर्म माना है। उनकी यह नीति है—"किसी भी जीवकी हिंसा न करो," किन्तु आततायीका अवश्य बध करो—आततायी वधार्हणः। उन्होंने केवल आततायियोंका ही बध किया और कराया।

उनकी अहिंसा नीतिका एक दृष्टान्त देकर हम इस प्रसंगको समाप्त करेंगे, महाभारतके कर्णपर्वमें एक प्रसंग है। युधिष्ठिर कर्णके बाणोंसे घायल होकर शिविरमें पड़े थे। यह समाचार पाकर अर्जुन उन्हें देखनेके लिए गये, उनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी थे। युधिष्ठिरने जब देखा कि अर्जुन कर्णको मारे बिना ही शिविरमें आ गये तो उन्होंने उनको बहुत फटकारा, साथ ही यह भी कह दिया "तुम अपना यह धनुष किसी और को दे दो" इतना सुनना था कि अर्जुनने तलवार खींच ली। उनकी प्रतिज्ञा थी कि "जो मुझसे यह कहेगा कि तुम अपना धनुष किसी दूसरे बलवान्को देदो तो मैं उसका

वध कर डालूंगा।" अर्जुनकी क्रूरतापूर्ण चेष्टा देखकर श्रीकृष्णने उन्हें रोका और कहा-"धिक्कार है। तुम धर्म पालनके नाम पर, सत्यकी रक्षाके दम्भसे, अपने निर्दोष और पूज्य भ्राताका वध करना चाहते हो! आज मुझे मालूम होगया कि तुमने कभी बड़े-बूढ़ोंकी सेवा नहीं की है, इसीलिए धर्मका रहस्य तुमने अभी तक नहीं समझा। जानते तो ऐसा नहीं करते। तुम्हारे वर्तावसे साफ जाहिर होता है कि तुम धर्मभीरु होनेके साथ ही अज्ञानी भी हो। अज्ञानवश अपनेको धर्मवेत्ता मानकर जो तुम धर्मकी रक्षा करने चले हो, उसमें जीव हिंसाका पाप है- यह बात तुम्हारे जैसे धार्मिककी समझमें नहीं आती। मैं तुम्हें धर्म का रहस्य बताता हूँ, सुनो! भीष्मजी, माता कुन्ती, विदुर तथा युधिष्ठिर जिस धर्मके तत्वका उपदेश कर सकते हैं, वही मैं तुम्हें बताता हूँ। सत्य बोलना बहुत अच्छा है, सत्यसे बढ़कर कुछ भी नहीं है, फिर भी सत्यवादीको कभी-कभी सत्यके स्वरूपका ठीक-ठीक ज्ञान होना कठिन हो जाता है। देखो सत्यका अनुष्ठान कैसे होता है? जहां सत्यका परिणाम असत् और असत्यका परिणाम सत् होता हो, वहां सत्य न बोलकर असत्य ही बोलना उचित है। हास्यमें, स्त्री प्रसंगके समय, किसीके प्राणोंका संकट आनेपर, सर्वस्वका अपहरण होते समय तथा परोपकारकेलिए नितान्त आवश्यकता हो तो झूठ बोलना क्षम्य है। इन पांच अवसरों पर झूठ बोलनेसे पाप नहीं होता। जब किसीका सर्वस्व छीना जा रहा हो तो उसे बचाने केलिए झूठ बोलना कर्त्तव्य है। वहां असत्य ही सत्य और सत्य ही असत्य हो जाता है। पहले असत्य और सत्यका निर्णय करके जो परिणाममें सत्य हो उसका पालन करना चाहिये। धर्म के सम्बन्धमें ऐसा निश्चय है कि जो कर्म अहिंसा युक्त है, वही धर्म है। धर्म प्रजाको धारण करता है और धारण करनेके कारण ही उसे धर्म कहते हैं, इसीलिए जो प्राण रक्षासे युक्त हो, जिसमें किसीभी जीवकी हिंसा न होती हो, वही धर्म है-यही धर्मवेत्ताओंका सिद्धांत है।

धर्म और सत्यकी कितनी सुन्दर व्याख्या है। अहिंसाके प्रति कितनी दृढ़ता है। सत्यके विषयमें यहाँ जो कुछ कहा गया है, वह, "सत्यं प्रियहितं च यत्" की ही विशद व्याख्या है। भगवान्‌के उपदेशसे अर्जुनने भाईके प्रतिअनादर शब्द कहकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्णकी क्योंकि गुरुजनोंका अनादर कर देना ही उनका वध है।
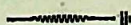
भगवान् ही एक मात्र सत्य हैं। और सब सत्यताएँ तो उनकी इच्छामात्र हैं—इस विचार से अपने हृदयको भरदो और सर्वत्र, सब रूपोंमें उसी सत्ताका अनुभव करो।

—आनन्दवाणी

अवतार-वन्दन

जब अधर्म उठ चढ़ा शीशपर, बढ़े असुर अभिमानी।
घटा धर्मका भाव धरापर, तापित संत अमानी॥
तब-तब नव अवतार ग्रहण कर तुमने दिया सहारा।
शोषित-पीड़ित मानवताको करके कृपा उबारा॥
नरके नित्य सखा नारायण! चक्र सुदर्शनधारी।
देव! तुम्हारे श्रीचरणोंमें है वन्दना हमारी॥

× × × ×

हममें, तुममें, खड्ग–खंभमें व्यापक हरिकी सत्ता।
यह कह भक्त-रायने गायी प्रभुकी मान-महत्ता॥
'कहाँ विष्णु ?' कह दैत्यराजने ज्यों तलवार उठायी।
खंभफाड़ तुम प्रकट हुए त्यों, जन की जान बचायी॥
दैत्यविदारण! दुःख निवारण! जय नृसिंह वपुधारी।
देव! तुम्हारे श्रीचरणोंमें है वन्दना हमारी॥

× × × ×

तुमने ही बन कमठ, पीठपर मन्दर–शैल उठाया।
क्षीर सिन्धु मथ इस वसुधापर सुधा–कलश प्रकटाया॥
दिखलाते से अखिल भुवनमें व्यापक अपना आपा।
पहले वामन फिर विराट बन तीन लोकको नापा॥
अपने शरणागत देवोंकी की तुमने रखवारी।
देव! तुम्हारे श्रीचरणोंमें है वन्दना हमारी॥

× × × ×

धन–मद्से उन्मत्त भूपदल हुआ ब्रह्म–हत्यारा।
जनहित परशुराम बन कर तब उन सबको संहारा॥
कर वरदान प्राप्त रावणने जब सब लोक रुलाये।
धर कर रूप महामानवका तब तुम भूपर आये॥
नर-बानरकी बढ़ी महत्ता, घटी निशाचर सत्ता।
दशमुखने दे दिये दसोंमुख, उड़ा लंकका लत्ता॥
जन-जनमें रम रहे राम! तुम निखिल भुवन-भयहारी।
देव! तुम्हारे श्रीचरणोंमें है वन्दना हमारी॥

—'राम'

दिव्यच्छटा

—श्री पं० रामप्रसाद त्रिपाठी

भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य मङ्गलमय सगुणसाकार स्वरूपकी समस्त पापताप हारिणी अतुलित सौन्दर्यशालिनी कान्तिको चन्द्रमाकी उपमा दी जाती है। यद्यपि भगवान् का स्वरूप सौन्दर्य प्रकृतिके प्रभावसे बहिर्भूत होनेसे प्रकृति परिणामभूत चन्द्र उपमान रूप से उचित नहीं प्रतीत होता, तथापि सर्वाधिक पूर्णचन्द्र ही प्राणियोंके मनका हरण करने वाला है इसलिये चन्द्रकी उपमा दी जाती है। पर विचार करनेसे यहाँ एक चन्द्रसे उपमान भाव का कार्य नहीं चलेगा, अपितु अनन्त कोटि चन्द्रोंकी कल्पना कीजिये—तथा उन सबों का मन्थन करके जो सारातिसार तत्त्व निकले, पुनः उसका भी मन्थन कीजिये—इस प्रकार परिशेषमें जो चन्द्रतत्त्व प्राप्त हो, वही उपमान कोटिमें प्रविष्ट है। पर चन्द्रमें कलङ्क है, चन्द्र वृद्धिक्षयशील है। भगवान्की अद्भुत अनिर्वचनीय दिव्य-छटा निष्कलङ्क एवं निर्विकार है। उससे रसिकोंको मुहुर्मुहुः वर्धमान प्रेम प्राप्त होता है। उस सौन्दर्यसुधाका एक कण भी जो पान कर लेता है, उसकी पिपासा बढ़ती ही जाती है। जिसके नेत्र और मन भगवान्के एक रोमपर भी पड़ जायें तो वे उस रोमके सौन्दर्य पर इतने मुग्ध हो जाते हैं कि वहाँ से आगे बढ़ ही नहीं सकते। इसीलिये तो भगवती भास्वती महालक्ष्मी भी वहाँ आकर चञ्चला होते हुए भी अचला होकर विराजती हैं औरों की तो कथा ही क्या है?

भगवान्के दिव्यातिदिव्य सौन्दर्यमें प्राकृत चन्द्रादि उपमाओंका इतना ही प्रयोजन है कि इनके द्वारा भगवत् सौन्दर्यका ध्यान करते-करते मनमें विशुद्धि आने लगती है और कुछ ही कालमें भगवान्का वास्तविक रूप भक्तके सामने प्रकट होने लगता है।

इसी प्रकार भगवान् घनश्याम भी कहे जाते हैं। पर यहाँ प्राकृत श्यामता नहीं। उनकी श्यामतामें नीलमणिकी उपमा दी जाती है। जिसमें विलक्षण दीप्तिमती नीलिमा है। उस नीलिमाकी अद्भुत दीप्ति अनन्तकोटि चन्द्रोंकी सम्मिलित दीप्तिमत्ताको अभिभूत

करती है। इस दिव्य दीप्ति सम्पन्न भगवन्मूर्त्ति रूप नीलकमलमें ऐसी सुकोमलता है कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डान्तर्गत सुकोमलताकी मूर्त्ति महालक्ष्मी भी उनके चरणारविन्दको स्पर्श करती हुई संकुचित होती हैं कि हमारे कठोर हाथोंसे भगवान्के सुकोमल चरणारविन्दको कहीं कष्ट न पहुँच जाये।

अनन्तकोटि कमलोंकी साराति‌सार कोमलता भी इस कोमलतासे अधोभूत ही है। ऐसे शीतल सुन्दर सुकोमल भगवान् इतने गम्भीर हैं कि नूतन नीलहारकी गम्भीरता अनन्तकोटि गुणित होकर भी उनके वास्तविक गाम्भीर्यके सहस्रांश तुलनामें भी नहीं टिक पाती। महेन्द्र नीलमणिसे दीप्तिमत्ता, चिक्कणता, दृढ़ता तथा नीलिमा सूचित होती है। नूतन नीलधरसे नीलिमा रस्यता तापापनोदकता और गम्भीरता सूचित होती है और नीलकमलसे नीलिमा, सुकोमलता, शीतलता एवं सौगन्ध्य सूचित होता है। पर ये सब प्राकृत हैं, इनसे यथार्थ बोध तो नहीं होता पर बोधके समीप पहुँचनेके लिये अन्य कोई उपाय नहीं है। प्राकृत तत्त्वोंसे ही ये कल्पनायेंकी जा सकती हैं। इन सबसे अनन्तकोटिगुणित गुण श्रीभगवान्के दिव्य मङ्गलमय विग्रहमें है।

हम सब जीवोंके परमकल्याण हेतु ही भगवान्का यह स्वरूप किन्हीं-किन्हीं कालोंमें प्रकट होता है। इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहते हैं कि—

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥

मेरा प्यारा नन्दकिशोर

अरे विश्व तू मुझे लुभानेका करता है व्यर्थ प्रयास,
नहीं जानता, मेरे उरमें दीख रहा प्रियका मृदु हास।
भले फूट जायें ये आँखें, पर न लखेंगी तेरी ओर,
देख, देख वह नृत्यकर रहा, मेरा प्यारा नन्दकिशोर॥

हियं निर्गुन नैनन्हि सगुन

—श्रीरामकिङ्कर उपाध्याय—

मानसका ब्रह्म पारमार्थिक दृष्टिसे अगुण होते हुए सगुण साकार रूप ग्रहण करता है। क्योंकि अगुणकी सगुणता भक्तकी आकांक्षाका परिणाम है। इसलिये मनु तपस्याके प्रारम्भमें अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर देते हैं—

उर अभिलाष निरन्तर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई।
अगुन अखण्ड अनंत अनादी। जेहि चितहि परमारथवादी॥
नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानंद निरूपाधि अनूपा।
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई॥

ईश्वर अगुण है और सगुण, हमारे नेत्रोंकी माँग है। इसलिये अगुण-सगुण सम्बन्धी अपने दृष्टिकोणको बड़े कवित्वपूर्ण शब्दोंमें दोहावलीमें प्रकट करते हैं:—

हियं निर्गुन नैनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम॥

हृदयमें निर्गुण और नेत्रमें सगुण—यह है उनकी व्याख्या। अन्तर्यामीके रूप निर्गुण तो प्रत्येक हृदयमें हैं ही, उसे अस्वीकार नहीं किया जासकता। पर आँखें तो अन्तःस्थको नहीं देख पाती हैं: अतएव उनकी माँग है—'प्रभु? आप कैसे भी हों हम आपको इस रूपमें देखना चाहती हैं।' सच पूछिये तो भक्तने निर्गुणको सगुण मानकर अपनी बहुत बड़ी समस्याका समाधान कर लिया। उसकी समग्रताकी चरम अभिव्यक्ति भी इसी रूपमें है। वह भीतर है, तो कुछ अधूरा और एकाङ्गी प्रतीत होता है। सगुण होकर भीतर बाहर जैसे सबमें परिव्याप्त होगया। अगुणकी निस्पन्दतामें सगुणलीलाका स्पन्दन जैसे हमें प्रत्येक क्षणमें उसे देखनेको बाध्य करता है।

प्रारम्भमें देखें तो ज्ञान और भक्तिमें बड़ी दूरी-सी जान पड़ती है। पर निष्कर्ष अनोखे रूपसे समान है। ज्ञानी कहता है—ब्रह्म अगुण है। तत्त्वतः जीव भी अगुण ही है। क्योंकि वह उससे अभिन्न है।

सो तें ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि-बीचि इव गावहि वेदा।

गुण मायिक हैं—मिथ्या हैं। जीवको भी अपनी अगुणताका बोध होना चाहिये। भक्तोंने भगवान्‌को सगुण बताया; जो ठीक प्रतिकूल सिद्धान्तसा प्रतीत होता है। पर सत्य तो यह है कि ब्रह्मको सगुण मानते ही जीव अगुण हो जायगा। थोड़ा-सा विचार करते ही बात स्पष्ट हो जाती है। ज्ञानीने जिसे मायिक कहकर छोड़नेको कहा, भक्तने उन सबको छोड़नेके स्थान पर मायापति भगवान्‌को दे दिया। परिणाम एक ही हुआ—दोनों अगुण हो गये।

संसार क्या है? नाम, रूप, लीला, धामसे हमारा परिचय है। यही संसार हैं। भक्तने यह सब भगवान्‌को दे दिया। भगवान्‌के नामकी महिमा गायी गई तो स्वनामसे महत्त्व-बुद्धि उठ गई। उसके रूपको देखा तो अपने रूपकी याद जाती रही। उसकी लीलाको देखा तो स्वकर्तृत्वकी भावना लुप्त हो गई। उसके धामको देखा तो अपने घरकी आसक्ति लुप्त होगई। अतएव अगुणको सगुण मानकर उसने वह सब पा लिया जो ज्ञानीको मिला था। हाँ, रस मिल गया व्याजमें और मूलधन कहीं खोया नहीं। मायापतिके विश्वको, उन्हींको सौंपकर भक्त, उसकी सत्यता असत्यता परखनेसे मुक्त हो गया। उसने अपने आपको अगुण बनानेकी चेष्टाके स्थानपर भगवान्‌को ही अपने समान बना लिया। हास्य, रुदन, आवेश, दया आदिके समस्त दृश्य उसमें दिखायी पड़े। उसमें आकांक्षा और भूखका उदय हुआ। 'चितइ मातु तनु लागी भूखा।' आनन्द यह कि—स्वयं रुदन रागसे युक्त दिखाई देने पर भी वह हममें वैराग्य उदित करता है—

कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन विरति दृढ़ाई॥

ज्ञानी कहाता है कि कर्तृत्व मिथ्या है, व्यक्ति मूढ़ता भरी अहंकारी प्रवृत्तिका परिचायक है।

अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।

अतः स्वयंको अकर्ता समझो। अब कठिनाई यह है कि हम लोगोंको कर्त्ता क्रिया सब दिखायी देते हैं। भक्तने कर्तृत्वको असत्य माननेके स्थानपर वास्तविक कर्ताकी खोज प्रारम्भकी। पता चला कि सब भगवान् करते-कराते हैं; वही सच्चे कर्त्ता हैं।

राम कीन्हि चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई ॥
बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोय।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होय ॥
नट मरकट इव सबहिं नचावत। राम खगेस बेद अस गावत ॥

अगुणमें कर्तृत्वस्थापन होनेसे रहा। इसलिये भक्तके भगवान् सगुण हैं, किन्तु हैं बड़े ही कौतुकी। नारदको अहंकार हुआ तो समझाकर दूर नहीं करते, क्योंकि फिर कौतुक का रस ही चला जायगा। अतः सोचते हैं—

मुनिकर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई ॥

निष्कर्ष तो यही निकला कि जीव अकर्त्ता है। जहाँ तक स्वयं सगुणका सम्बन्ध है, उसमें कर्तृत्व-भोक्तृत्वका भी कोई भय नहीं। क्योंकि उसका कर्तृत्व भी लीलाका ही कर्तृत्व है। अभिनयके प्रत्येक कर्तृत्वमें पुरस्कार है, दण्ड नहीं। चोरी करे तो दण्ड मिले, किन्तु नाटकमें चोरीका अभिनय सराहना और पुरस्कार दोनों प्राप्त कराता है।

...o0o...

तुमने ही संसार को पकड़ रखा है

एक जिज्ञासु किसी महात्माके पास गये और बोले—'महाराज ! संसारने तो मुझे बुरी तरह पकड़ रखा है। इससे छूटनेका कोई उपाय बताइये !'

महात्मा उस समय कुछ बोले नहीं थोड़ी देरमें जिज्ञासुको लेकर घूमने निकले और एक वृक्षको दोनों हाथोंसे पकड़कर चिल्लाने लगे—'दौड़ो ! इस वृक्षने मुझे पकड़ रखा है, मुझे छुड़ाओ !' जिज्ञासु बोला—'महाराज, वृक्षने आपको नहीं पकड़ा है, आपने वृक्षको पकड़ रखा है। वृक्षके न हाथ हैं, न संकल्प है, न बाँधनेकी शक्ति है, वह आपको कैसे पकड़ सकता है ?'

महात्मा वृक्षको छोड़कर बोले—'इस संसारके भी तो हाथ नहीं हैं। इसमें भी न संकल्प है न बाँधने की शक्ति। यह तुम्हें कैसे पकड़ सकता है ? तुमने ही संसारको पकड़ रखा है।

शक्त्यावेशावतार भगवान् श्रीपरशुराम

डा० भागीरथप्रसाद त्रिपाठी

शक्तिके बिना संसारमें किसीका भी मूल्य नहीं है। शिव भी शक्ति-विहीन होकर शव हो जाते हैं।

शिवोऽपि शवतां याति कुण्डल्यादि विवर्जितः।
शक्तिहीनस्तु यः कश्चिदसमर्थः स्मृतो बुधैः॥

(देवीभागवत १,८,३)

यह शक्ति जिसे संप्राप्त है वह दुष्टोंका दलन, अन्यायोंका परिमार्जन करके देशमें धार्मिक राज्यके स्थापनार्थ समर्थ होता है। जब-जब हमारे देशमें अत्याचार हुए तब-तब उन अवसरोंपर महापुरुषोंने जन्म लेकर अत्याचारियोंका उन्मूलनकर देशमें शान्ति स्थापित की।

सहस्रार्जुनके अत्याचारोंसे त्रस्त लोकके परित्राण हेतु भगवान् परशुरामने ब्रह्मा, विष्णु और महेशके परीक्षक ब्रह्माके मानसपुत्र भृगुके कुलमें शक्त्यावेशरूपेण अवतार लिया। रेणुका तथा जमदग्नि इनके माता और पिता थे। रेणुका विदर्भराज प्रसेनजित्की पुत्री थीं। उनके चार पुत्र थे—रुमण्वान्, सुषेण, विश्व तथा विश्वावसु। जब कार्तवीर्यके वधके लिये इन्द्र आदि देवताओंने भगवान् विष्णुसे प्रार्थनाकी तब वे मधुसूदन स्वयं जमदग्निके पंचमपुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए—

पश्चात्तस्यां स्वयं जज्ञे भगवान् मधुसूदनः॥
कार्तवीर्यवधायाशु शक्राद्यैः सकलैः सुरैः।
याचितः पञ्चमः सोऽभूत् तेषां रामाह्वयस्तु यः॥

(कालिकापुराण ८५ अध्याय)

पृथिवीका भार उतारनेके हेतु यह परशु (फरसा) के साथ उत्पन्न हुए। उनका वह परशु सहज था।* उसे वह कभी छोड़ते नहीं थे—

भारावतारणार्थाय जातः परशुना सह ।
सहजः परशुस्तस्य तं जहाति कदाचन ॥
(कालिकापुराण ८५ अ०)

कुठार शस्त्रसे रमण = क्रीड़ा करनेके कारण (अर्थात् दुष्टोंको समाप्त करनेके लिये स्वयंको रमण कराते थे) अन्वर्थनामा परशुराम थे। यह उनका सोलहवाँ अवतार था—

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ॥
त्रिः सप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥
(भागवत १।३।२०)

इनकी पितामही महाराज गाधिकी पुत्री ऋचीकपत्नी सत्यवतीने अपनी माता (गाधिपत्नी) के आग्रहपर मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित अपनाब्रह्मतेजोमय चरु तो माताको दे डाला और माताका क्षात्रतेजोयुक्त चरु स्वयं खा लिया। फलतः उसके पौत्र परशुरामजी क्षत्रिय स्वभाववाले क्रूरकर्मा हुए तथा गाधि-पत्नीसे ब्राह्मणकर्मकारी विश्वामित्र हुए—

अयं निजपितामह्याश्चरुभुक्ति विपर्ययात् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियाचारो रामोऽभूत् क्रूरकर्मकृत् ॥
(कालिका पु० अ० ८५)

पद्मपुराणके अनुसार यह विष्णुके अंशांश भागसे उत्पन्न हुए थे। उनके पूर्णावतार नहीं किन्तु शक्त्यावेशावतार थे—

विष्णोरंशांशभागेन सर्वलक्षणलक्षितम्–६।२४१।१३

एतत्ते कथितं देवि ! जामदग्न्यमहात्मनः ।
शक्त्यावेशावतारस्य चरितं शार्ङ्गिणः प्रभोः ।
(६।२४१।८०)

---

*पद्मपुराण ६।२४१ के अनुसार उन्हें यह परशु विष्णुने उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर दिया था पहले उनका नाम केवल राम था।

पितृभक्तशिरोमणि परशुरामकी तत्परता अत्यन्त श्लाघनीय है। एक बार रेणुका गंगा तट पर गईं। वहां गन्धर्वकी जलक्रीड़ा देखनेमें वे इतनी मग्न हुईं कि उन्हें समयका ध्यान नहीं रहा। आश्रममें पहुंचनेपर जमदग्निने क्रुद्ध हो अपने चारों पुत्रोंको आदेश दिया- 'अपनी माताका सिर काट डालो'। वे पिताकी आज्ञाका परिपालन न कर सकनेके कारण शापके भागी हुए। जब परशुरामको आज्ञा दी गई तब उन्होंने बिना कुछ विचारे अपने परशुसे माताका शिरश्च्छेदन कर दिया। इस आज्ञा परिपालकतासे प्रसन्न होकर जमदग्निने वर मांगनेको कहा। उन्होंने माताका जीवन, अपने वधकी उनको स्मृति न होना, मातृहत्या का पाप न लगना, भाइयोंका भी प्रकृतिस्थ होना, युद्धमें अप्रतिद्वन्द्विता तथा दीर्घायुष्कता मांगी। जमदग्निने उनकी समस्त इच्छाओंकी परिपूर्तिकी—

स वव्रे मातुरुत्थानमस्मृतिं च वधस्य वै।
पापेन तेन चास्पर्शं भ्रातॄणां प्रकृतिं तथा॥
अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे दीर्घमायुश्च भारत।
ददौ च सर्वान् कामांस्तान् जमदग्निर्महातपाः॥

(महाभारत ३,११६, १६–१८)

धनुर्वेद आदि संपूर्ण वेदोंको अपने पितासे पढ़कर वे वेदविद्या विशारद हो गये— कालिकापु० ८५ अध्याय। तदनन्तर शालग्राम पर्वतपर तपस्या करनेके लिये चले गये। ब्रह्मर्षि कश्यपसे दीक्षा प्राप्त करके महातपस्वी परशुरामने जितेन्द्रिय तथा यतवाक् होकर अनेक वर्षों तक तपस्याकी— (पद्मपुराण ६।२४१।१६-१७)

उधर ब्रह्मर्षि जमदग्नि गंगा तटपर निवास करते हुए विधिवत् बड़े-बड़े यज्ञ दान आदि धर्म करने लगे। इन्द्र प्रदत्त धेनुके प्रसादसे उनके निकट संपूर्ण संपत्तियां विद्यमान थीं।

किसी समय हैहयाधिपति सहस्रार्जुन सब राष्ट्रोंको दत्तात्रेयके प्रसादसे— (महा- भारत–वनपर्व ११५।१२) जीतकर विशाल सेनाके साथ जमदग्निके आश्रममें आया। उसने मुनिको प्रणाम कर कुशल पूछा और वस्त्र आभरण आदि प्रदान किये। जमदग्निने गृहागत अतिथिका मधुपर्कसे विधिपूर्वक सत्कार किया। जमदग्निकी प्रार्थनापर सुरभिने अक्षय्य अन्न-पानादिको उत्पन्न कर दिया। ब्रह्मर्षिने समस्त सेनाके सहित राजाको भोजन कराया। इस राजोचित ऐश्वर्यको देख सहस्रार्जुनने महर्षिसे धेनुकी याचनाकी। उनके निषेध करने- पर उसने बलपूर्वक धेनुको पकड़ लिया। गायने उसकी संपूर्ण सेनाको मार डाला और स्वयं इन्द्रके पास पहुँच गई।

अपनी सेनाको मरा देख सहस्रार्जुनने जमदग्निको मुक्कोंसे पीट-पीट कर मार डाला

श्रोर अपने नगर चलता बना। (यह कथा पद्मपुराण ६।२४१।१—३९ की है। महाभारत के अनुसार परशुराम द्वारा सहस्रार्जुनके मारे जाने पर उसके पुत्रोंने जमदग्निका वध किया।)

इधर परशुरामने तपस्या द्वारा विष्णुको प्रसन्न कर लिया। विष्णु बोले-हे वत्स! तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें अपनी वैष्णवी शक्ति प्रदान करता हूँ। इस मेरी शक्तिसे आवेशित होकर तुम दुष्ट नृपोंका दलन करो। भूमिका भार हरो तथा देवोंको प्रसन्न करो। धर्म एवं पराक्रम पूर्वक सागरान्त पृथिवीका पालन करो—

आवेशितोऽथ मच्छक्त्यां जहि दुष्टान्नृपोत्तमान्।
भूभारकविनाशाय देवतानां हिताय च॥

(पद्म० ६।२४१।४२)

आश्रममें पिताको निहत देख वह सीधे सहस्रार्जुनके नगर जा पहुँचे और संपूर्णसेना सहित उसके हाथों तथा सिरको काट दिया। एक इक्ष्वाकु कुलको छोड़ (क्योंकि वह उनके नानाका कुल था) दिया किन्तु उससे भी राज्य छीन लिया।

शेष क्षत्रिय वंशोंका इक्कीस बार उन्मूलन किया। इस प्रकार अत्याचार परायण नृपवंशोंको समाप्त कर परशुरामने विधिपूर्वक अश्वमेघ महायज्ञ किया। वहाँ सप्तद्वीपवाली पृथिवी दान करके वह महातपस्वी तपस्या करने हेतु नरनारायण आश्रम चले गये (पद्म० ६।२४१।७८-७९)। महाभारतके अनुसार महात्मा कश्यपको पृथिवी समर्पित करके अमित विक्रम परशुराम, युधिष्ठिरके समयतक महेन्द्र पर्वतपर रहते थे। वे अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथियोंमें दर्शन देते थे—

स प्रदाय महीं तस्मै कश्यपाय महात्मने।
अस्मिन् महेन्द्रे शैलेन्द्रे वसत्यमितविक्रमः॥ वनपर्व ११७।१४॥
चतुर्दशीमष्टमीं च रामं पश्यन्ति तापसाः॥ वनपर्व ११५।६॥

यद्यपि दशरथनन्दन रामके रूपमें विष्णुके अवतीर्ण होनेपर परशुरामके अवतारका प्रयोजन समाप्त हो गया था तथापि उनका इतना दबदबा था कि धनुष टूटनेपर जब वे मार्गमें जाते हुए श्रीरामचन्द्रको रोककर खड़े हो गये तब एक बार वशिष्ठ आदि मुनियोंके हृदय काँप उठे। (वा० रा० १।७४।२०-२१॥) श्रीराम द्वारा उनकी वैष्णवी शक्ति ले लिये जानेपर वे शक्तिरहित सामान्य ब्राह्मणकी भाँति (पद्म० ६।२४२।१६४) नरनारायण आश्रममें तपस्या करने चले गये (पद्म० ६।२४२।१८०)।

द्वापर युगमें उन्होंने भीष्मपितामहको अस्त्रविद्याकी शिक्षा प्रदानकी। पश्चात् अम्बा के सिलसिलेमें भीष्मने उनसे युद्ध ठान दिया। जिसने इक्कीस बार पृथिवीपर विजय प्राप्तकर के दुष्ट नृपतियोंका राज्य छीन लिया वह अपने शिष्य भीष्म द्वारा पराजित हो गया। शक्ति

छीनी जानेके बाद यह उनकी प्रथम पराजय थी। तबसे उन्होंने प्रतिज्ञाकर ली कि वह किसी क्षत्रियको अस्त्रकी शिक्षा नहीं देंगे।

महत्त्वाकांक्षी कर्णने परशुरामकी अस्त्रविद्या–नैपुणीकी प्रशंसा सुन उनसे अस्त्रविद्या सीखनेका निर्णय किया। ब्राह्मणवेष धारण करके वे उनसे अस्त्र विद्या सीखने लगे। एक दिन गुरु,शिष्यकी गोदमें सिर रखकर सो रहे थे। एक सृप कीटने कर्णकी जंघामें काटना प्रारम्भ किया। गुरुकी निद्रा भंग न हो जाय इस उद्देश्यसे खून बह जानेपर भी कर्ण हिला तक नहीं। अन्ततः रक्त बहकर परशुराम तक पहुँचा और उसके स्पर्शसे वे जाग उठे। इस दुःसह कर्मको देख उन्होंने कर्णको क्षत्रिय समझ लिया। अतः उसे शाप दे डाला–तुम हमसे सीखी विद्याको समय आनेपर भूल जाओगे।

इसके पश्चात् परशुरामके इतिवृत्तका पता नहीं लगता। किसी किसीके मतानुसार वे दक्षिण दिशामें महेन्द्र पर्वतपर अब भी तपस्या कर रहे हैं। उनकी दीर्घायुष्यताके संबंधमें यह श्लोक स्मरणीय है—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

१. अश्वत्थामा, २. बलि, ३. व्यास, ४. हनुमान्, ५. विभीषण, ६. कृपाचार्य, तथा ७—परशुराम चिरजीवी हैं।

हमें उनकी जयन्तीके अवसरपर त्याग और तपस्याके साथ-साथ देशोद्धारकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। सामान्य पुरुष होते हुए भी उन्होंने अत्याचारोंका शक्तिपूर्वक दमन किया। क्या आज कश्मीर आदिकी समस्याओंको हल करनेवाला और चीनी अत्याचारों को कुचलनेवाला कोई महापुरुष अवतीर्ण हुआ है?

* जीवित ही मरेके समान *

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपद सेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥
(भागवत ३।२३।५६)

इस संसारमें जिसका कर्म न तो धर्मके लिये होता है न वैराग्यके लिये और न तीर्थपाद भगवान्की चरण-सेवाके लिये होता है, वह जीते-जी भी मरेके समान है।

अक्षय तृतीया

● श्रीमधुव्रत

अक्षय तृतीया भारतवर्षका सुप्रसिद्ध त्योहार है । महाराष्ट्रमें इस त्योहारको बड़े धूमधामसे मनाया जाता है । सभी समृद्ध गृहोंमें उत्तमोत्तम पकवान बनते तथा प्रीतिभोज एवं ब्राह्मण भोज होते हैं । उस दिन वहां पकी इमलीके रसका विशेष उपयोग होता है । वृन्दावनमें अक्षय तृतीयाको श्रीबांकेविहारीजीके चरणोंका दर्शन होता है । अन्यान्य प्रान्तोंमें भी इस तिथिका विशेष माहात्म्य माना गया है । वैशाख मास समूचा ही अनन्त माहात्म्यशाली है । उसमें प्रातः स्नान, विशेषतः गङ्गामें अवगाहन की अधिक महिमा है । अन्न दान, गुड़ दान, प्याऊ चलाना आदि कार्य इस मासमें अधिक महत्त्वके हैं । पद्मपुराणमें वैशाख मासके माहात्म्यका बड़े विस्तारसे वर्णन उपलब्ध होता है । अक्षय तृतीया इस मासकी सर्वाधिक महत्त्वशालिनी तिथि है ।

तृतीयाकी अधिष्ठात्री देवी हैं गौरी देवी; अतः उस दिन उनकी आराधनाका विशेष माहात्म्य है । नारदपुराणमें कहा गया है कि 'वैशाख शुक्लपक्षकी तृतीया त्रेतायुग की आदि तिथि है । उसे 'अक्षय तृतीया' कहते हैं । उस दिन जो सत्कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है । उस तिथिको लक्ष्मी सहित जगद्गुरु भगवान् नारायणकी पुष्प, धूप और चन्दन आदि से पूजा करनी चाहिये । उस दिन गङ्गाजीके जलमें नहानेकी बड़ी महिमा है । ऐसा करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । वह सम्पूर्ण देवताओं से वन्दित हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है । [ना० पु० पूर्व भाग, चतुर्थ पाद] ।

अग्नि पुराण अध्याय १७८ में तृतीयाके व्रतोंकी चर्चा है । वैशाख शुक्लपक्षकी तृतीयाको 'ललितायै नमः' बोल कर गौरीजीकी पूजा करनी चाहिये । उक्त तृतीयाको सौभाग्यदायिनी तृतीया भी कहते हैं । उस दिन व्रत करनेसे गौरी लोककी प्राप्ति होती है । अध्याय १९९ में कहा गया है कि प्रत्येक मासकी तृतीयाको गौरी तथा महेश्वरका पूजन करना चाहिये । इससे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है ।

व्रतके नियमः—अग्नि पुराण अध्याय १७५ में व्रतके सम्बन्धमें बहुत-सी ज्ञातव्य बातोंपर प्रकाश डाला गया है। उन्हें यहां संक्षेपसे प्रस्तुत किया जाता है।

शास्त्रोक्त नियमको व्रत कहते हैं। वह तप माना गया है। व्रतके ही विशेष नियम शम-दम आदि हैं। व्रत कर्ताको उपवास आदिके कारण शारीरिक सन्ताप सहन करना पड़ता है; इसीलिये उसे तप कहा जाता है। उस दिन इन्द्रिय समुदायपर नियमन (नियन्त्रण) रक्खा जाता है; इसीलिये व्रतका एक नाम नियम भी है। जिन द्विजोंने अग्नि चयन नहीं किया है, उन्हें व्रत, उपवास, नियम एवं नाना प्रकारके दान करनेसे श्रेयकी प्राप्ति होती है। व्रत तिथिके अधिष्ठाता देवता प्रसन्न होकर व्रतीको भोग एवं मोक्ष प्रदान करते हैं। 'पापेभ्य उपावृत्तस्य यः गुणैः सह वासः, स उपवासः।' पापसे दूर रह कर सद्गुण धारण पूर्वक जो वास है, उसका नाम उपवास है—इस व्युत्पत्ति के अनुसार व्रतको उपवासकी संज्ञा दी गयी है। व्रतीको व्रतके दिन 'सर्वभोग विवर्जित' रहना चाहिये। उपवासी पुरुष कांस्य, मांस, मसूर, चना, कोदों, शाक, मधु, पराया अन्न तथा स्त्री-सहवासका सेवन कदापि न करे। पुष्पमय अलङ्कार, वस्त्र, धूप, गन्धानुलेपन, दन्तधावन तथा अञ्जन—ये वस्तुएं उपवासके दिन उपयोगमें लायी जा सकती हैं. ये दूषित नहीं होती हैं। वारंबार पानी पीने, एक बार भी पान खाने, दिनमें सोने तथा नारी सहवास करनेसे उपवास दूषित हो जाता है। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रिय निग्रह, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा अस्तेय (चोरी न करना)—ये सामान्य दस धर्म सभी व्रतों में पालनीय हैं। पवित्र सूक्तोंका जप करे और यथाशक्ति अग्निमें आहुति दे। व्रीहि (धान), सांठीका चावल, मूंग, केराव, तिल-जौ, सांवां नीवार (तिली) और गेहूं आदि व्रतमें हितकर कहे गये हैं। कोंहड़ा, लौकी, बेंगन तथा पालक और पोयेके साग व्रतमें सर्वथा त्याग दे। (अ० पु० १७५।१५)

ब्रह्मकूर्चः—कपिला गायका एक पल मूत्र, आधे अंगूठे बराबर गोबर, सात पल दही, एक पल घी तथा एक पल कुशोदक एकत्र करे। गोमूत्र ग्रहण करते समय गायत्री-मन्त्र पढ़े। 'गन्ध द्वारा' इत्यादि मन्त्र पढ़कर गोबर को मिलावे, 'अप्यायस्व' इस मन्त्रको पढ़ कर दूध डाले, 'दधि क्राव्णो' इत्यादि मन्त्रसे दहीका मेलन करे, 'तेजोऽसि' इस मन्त्रसे घृत तथा 'देवस्य त्वा' इस मन्त्रसे कुशोदक मिलाये। इस तरह जो पञ्चगव्य तैयार होता है, उसे 'ब्रह्मकूर्च' कहते हैं। ब्रह्मकूर्चको अभिमन्त्रित करनेके लिये 'आपो हिष्ठा' इत्यादि ऋचाओंका जप करे। अघमर्षण सूक्त अथवा प्रणवसे भी उसका अभिमन्त्रण करे। तत्पश्चात् व्रतोपवास करने वाला पुरुष उसको पीये। ऐसा करनेसे वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। जो मांसको त्याग देता [नहीं खाता], जो अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करता तथा जो सत्य बोलता है वह स्वर्गलोकमें जाता है।

व्रत भङ्गका प्रायश्चित्तः—गर्भवती स्त्री, प्रसूता नारी तथा रजस्वला कन्या अशुद्धावस्थामें व्रत संबन्धी कृत्य स्वयं न करके दूसरेसे कराये। यदि क्रोध, प्रमाद या लोभसे व्रतभंग हो जाय तो तीन दिनों तक भोजन छोड़ दे अथवा सिर मुंड़ा ले। यदि पुरुष स्वयं व्रत करनेमें असमर्थ हो तो पत्नी या पुत्र द्वारा उसे कराये। यदि व्रती पुरुष क्षुधाके वेगसे मूर्च्छित हो जाय तो पुरोहितको चाहिये कि उसे दूध आदि खिला-पिला कर उसको कष्टसे उबारे। [अ० पु० १७५।३९ से ४२] जल, फल, मूल, दूध, ब्राह्मण की कामना पूर्ति, गुरुकी आज्ञाका पालन तथा औषध सेवन ये आठ वस्तुएं व्रतका हनन नहीं करती हैं—इनका सेवन कर लेनेपर भी व्रत सुरक्षित रहता है।

पूजन प्रकार—व्रतके दिन व्रतके अधिष्ठाता देवता—व्रतपतिकी भक्तिभावसे पूजा करनी चाहिये। पहले व्रतपतिसे निवेदन करें कि 'भगवन्! यह व्रत मैंने कीर्ति, संतति, विद्या आदि, सौभाग्य, आरोग्य, वृद्धि, अन्तः शुद्धि, भोग अथवा मोक्षके लिये ग्रहण किया है। आपके समक्ष ग्रहण किये गये इस व्रतकी आपकी कृपासे निर्विघ्न सिद्धि या पूर्ति हो। यदि व्रतके पूर्ण होनेसे पूर्व ही मेरे प्राण चले जांय तो भी आपके प्रसादसे व्रत तो पूर्ण ही मान लिया जाय।'

तदनन्तर आवाहन, करके देवताको पञ्चगव्य तथा पञ्चामृतसे स्नान करावे फिर गन्ध पुष्प मिश्रित जलसे पाद्य अर्घ्य एवं आचमनीय निवेदित करे। शुद्धोदक द्वारा स्नान करानेके पश्चात् वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य समर्पित करे। फिर आरतीके पश्चात् प्रार्थना करे—

प्रार्थना—'प्रभो! व्रतपते! मैंने जो मन्त्र, क्रिया तथा भक्तिभावसे हीन पूजन किया है, मेरा वह सब पूर्ण हो जाय। आप मुझे धर्म, धन, सौभाग्य, गुणयुक्त संतति, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करें। इस समय इस पूजाको ग्रहण करके पुनः आने तथा वरदान देनेके लिये यहाँसे पधारें।'

व्रतमें व्रतपतिकी सुवर्णमयी मूर्तिकी पूजाकी जाती है। मूर्ति अपनी शक्तिके अनुसार बनवायी जाय। व्रतीको भूमिपर शयन करना चाहिये। व्रतके अन्तमें जप, होम तथा दान करे। प्रत्येक व्रतमें यह साधारण नियम है। जैसी अपनी शक्ति-सामर्थ्य हो तदनुसार चौबीस, बारह, पांच, तीन अथवा एक ब्राह्मणको भोजन करावे और दक्षिणा दे। गौ, सुवर्ण-रजत, पादुका, उपानह, जलपात्र, अन्नपात्र, भूमि, छत्र, आसन, शय्या युगलवस्त्र तथा कलश ये व्रतमें दातव्य वस्तुएं हैं।

उपर्युक्त विधिसे अक्षयतृतीया व्रतका अनुष्ठान और पूजन करनेवाला मनुष्य अक्षय पुण्यका भागी होता है।

—*—

कहानी

हनुमान्

श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

हरसाल रामलीला होती और हर साल रामलीलामें चेतराम पाठक हनुमान् बनते थे। इस साल जाड़ोंमें वह चल बसे तो एक समस्या खड़ी हो गई कि अब कौन बने हनुमान्, किसको फबेगा चेहरा, कौन ऐसा बली है ?

कलक्टरके पेशकार मुंशी महतावराय रामलीला कमेटीके मैनेजर थे। वह कस्बे में आये हुए थे। मन्दिरमें सब लोग जमा थे। कलसे रामलीला शुरू होनेको थी और यह अभी निश्चय न था कि कौन बनेगा हनुमान्।

जिस-तिसके नाम लोग ले रहे थे, पर कोई ठीक जंचता न था कि अचानक मुंशी महतावरायने खुशीसे उछलकर कहा, "यह बैठा तो है हनुमान्।" तब जैसे सबकी नजर गई और सब जैसे चौंके और प्रसन्न हुए कि हाँ, यह बैठा तो है हनुमान्।

और सबने कहा एक स्वरसे, "बस-बस हो गया ठीक। चलो, चिन्ता कटी।"

उसका असली नाम, कोई नहीं जानता था। छोटे-बड़े सब उसे हनुमान् कहकर ही पुकारते थे। असली नामसे तो उसे केवल माँ पुकारती—माँ उसे गंगासहाय कहकर पुकारती नाराज होती तो फिर "गंगासैया" कहती।

गंगासहाय नाम कस्बेके एक पंडितने पंचांग देखकर रखा था, पर दूसरा नाम उसने इस दुनियामें अवतरित होते ही पा लिया था। सूतिकागृहसे बाहर निकलते ही खटकिन दाई मुंहमें आंचल देकर बोली कि हनुमान् पैदा हुआ है।

चाची बोली, "कहती क्या है री हनुमान् पैदा हुआ है ?"

दाई बोली, "जिया की कसम, हू-ब-हू हनुमान् है, बस, पूंछ नहीं है।"

चाचीसे अदावत चल रही थी। दुश्मनके पुत्र हुआ था। हनुमान् है हू-ब-हू सुनकर कलेजेमें थोड़ी चैन पड़ी। तब भी मुंहसे यही निकला "हाय राम, हनुमान् पैदा हुआ है अभागिनके।" और बारह दिन बाद तो सबने अपनी आँखोंसे देख लिया उसे। चेहरा-मोहरा बिलकुल हनुमान् जैसा था उसी तरह ठोढ़ी आगे को निकली हुई। नाक धंसी हुई। और ओठ फैले-फैले, सारे शरीरपर रोएं थे और चौड़े पंजों वाले हाथ-पैर थे।

फिर ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया—सयाना होता गया, रंग-ढंग भी हनुमान्-जैसे दीखने लगे। लम्बी-ऊंची छलांग मारता, बात कहते पेड़पर चढ़ जाता, अपने से दुगुने लड़केको उठाकर पटक देता, जिस कामको कहो आनन-फाननमें करके रख देता। लोग शाबासी देते "वाहरे हनुमान्।" तो सीना फुला लेता, दांत चमकाकर हंसना और यह सब देख-सुनकर माँ उसकी कभी हंसती तो कभी कुढ़कर मन ही मन कहती कि मेरी कोखसे यह कहनेको पैदा हुआ, अभागा।

पर उसे अपने इस बेढंगे—कुरूप चेहरेके लिए कोई लज्जा, कोई कुंठा न थी, बल्कि सच पूछो तो बड़ा नाज था उसे अपने हनुमानत्व पर। भगवान् रामचन्द्रके मन्दिरमें जाता तो मूर्तिके सामने घन्टों एक पैरसे खड़ा रहता, मूर्तिके सम्मुख लम्बा लेटकर प्रणाम करता। चरणामृत पीकर नयन मूंद लेता, मानो हृदयमें अमृत उतर गया हो। धीरे-धीरे उमर बढ़ती गयी। बल बढ़ता गया और खुराक बढ़ती गयी। बाप तो जन्मसे चार मास पहले ही चल बसे थे, मां थी दुखियारी और खेत था बारह बीघा नदी-किनारे और एक बगिया थी अपनी छोटीसी। किसी तरह गुजर-बसर होती थी, किसी तरह दोनों माँ-बेटे जिन्दा थे।

हनुमान्ने जैसे-तैसे मिडिल तक पढ़ा, परीक्षा दी और फेल हो गया तो फिर उसने बड़ी शान्तिसे अपनी माँसे कह दिया कि बस, अब नहीं पढ़ूंगा, अब नहीं पढ़ सकूंगा।

"क्या करेगा तू?" माँने उसांस लेकर पूछा तो छूटते ही बोला, "सेवा करूंगा भगवान्की।"

"खायेगा क्या?"

महावीर-जैसे बलिष्ठ शरीरवाला बोला हंसकर, "अन्न खाऊंगा।

मांने कुढ़कर कहा, "तेरे लिए दोनों जून ढाई सेर अन्न चाहिए। इतने सालोंसे तेरे लिए हड्डियाँ घिस रही हूँ, इतने साल हो गये अन्न जुटाते। तू क्या यही चाहता है कि मैं मरते दम तक इसी तरह तेरे लिए हाड़ मांस सुखाती रहूँ अपना?"

हनुमान् घड़ीभर स्तब्ध रहा फिर उसने धीरे-धीरे कहा, 'नहीं मां, मैं कुछ उपाय करूंगा, अब तुझे कष्ट न दूंगा।"

हनुमान्‌ने दूसरेही दिन काम ढूंढ़ लिया। हरचरनलालकी दुकानथी, हलवाई-गिरीकी। पन्द्रह दिनसे ऊपर हुए, उनका नौकर सन्दूककी कुल रकम झाड़कर ले भागा था और अब पास-पड़ोसके गाँवोंसे दूध लाने वाला कोई न था। हनुमान्‌ने यह भार अपने कंधोंपर लिया। वह लालाके लिए गाँवोंसे दूध लाने लगा।

सप्ताह भर मुश्किलसे बीता होगा कि एक दिन अचानक छोटी-सी घटना होगई। हनुमान् दूध लाया, लालाने उसके सामनेही दूधमें पानी मिलाया, फिर गड्ड-मड्ड करके रख दिया, बाहर चौंतरेपर। हनुमान् बैठा देखता रहा। लाला भट्टी सुलगाने लगे कि एक ग्राहक आ पहुँचा। लालाने हनुमान्‌से दूध देनेको कह दिया।

"पैसे ?"

लाला वहींसे बोला—"चार आने।"

हनुमान्‌ने दृढ़तासे कहा—"नहीं, दो आने।"

लाला भौंचक रह गए। हनुमान् उठकर खड़ा होगया। उसने चिल्लाकर कहा, "तुम कैसे जालिम आदमी हो। दस सेर दूधमें सात सेर पानी मिलाकर दूने दाम वसूल कर रहे हो। लेकिन इन गरीबोंपर तो रहम करो, इनसे पैसा ठगते तुम्हें शरम नहीं आती ?"

लालाने इसपर कुछ कहा तो हनुमान् और जोरसे चिल्लाया। देखते-देखते भीड़ जमा होगई। कुछ लोग लालाका पक्ष ले रहे थे। सहसा हनुमान् दुकानसे कूदकर नीचे आया और भीड़से बोला, "रहना भाइयो, मैं अभी आया" और पलक मारते दरोगाजीको बुला लाया पुलिस चौकीसे बाँह पकड़कर और उन्हें दूधके पास खड़ा करके बोला कि इसे नपवाइये दुबारा। मैं अभी गांवसे कुल पन्द्रह सेर दूध लाया हूँ और अब इस बरतनमें पच्चीस सेर से कम दूध न होगा। लालासे पूछिये जरा, मैं कितना दूध लेकर आया हूँ, बहीमें कितना लिखा है उन्होंने ?"

लालाके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। दरोगाजी हंसने लगे। पता नहीं लालापर क्या बीती। हनुमान्‌की नौकरी छूट गई। दो दिन वह गुम-सुम पड़ा रहा, भीतर कोठरी में। न माँने कुछ पूछा न बेटा कुछ बोला। तीसरे दिन वह तड़के-तड़के दूध वाले गाँवमें जा पहुँचा और बारी-बारीसे घर-घर दूध वालोंसे जाकर कहने लगा, "मुझे दूध दो अपना, लालासे एक आना ज्यादा दूंगा, सेर पर। पर भाइयो, पेशगी देनेके लिए मेरे पास एक पैसा नहीं है। मुझपर यकीन करो, मेरे ईमान-धर्मपर विश्वास करो तो दूध दो मुझे।"

दूध वालोंने कहा, "हम तुम्हारा यकीन करते हैं. हम तुम्हें दूध देंगे।" तुम ब्राह्मण

हो, तुम छल-छिद्र क्या जानो। हम आदमीको पहचानते हैं। लाला तो पूरा राक्षस है। हम तुम्हें दूध देंगे।"

और तब महावीर जैसे बलिष्ट शरीरवालेने यह मेहनत-मशक्कतका काम अपना लिया। शुरू-शुरूमें वह दूध सिरपर लादकर लाता रहा, फिर उसने पुरानी साइकिल खरीद ली। बड़े-बड़े ढक्कनदार बरतन खरीदे लोहेके और दूधका कारोबार करने लगा।

पहले दिन वह पुलके पास दूध लेकर खड़ा हुआ और चिल्ला-चिल्लाकर कहता था, "खालिस दूध लो, आठ आने सेर। मिलावट सिद्ध करनेवालेको सौ रुपये इनाम दूंगा। खालिस दूध आठ आने सेर।"

घंटाभर बीत गया। हनुमान् स्थिर होकर खड़ा था कि बुढ़िया आई पड़ौस वाली घसियारिन, उसका नाती बीमार था। पावभर दूध लेकर पैसे देने लगी टटोल-टटोलकर तो हनुमान्‌ने वहीं उसका हाथ पकड़ लिया और हंसकर कहा, "पैसे नहीं, आशीर्वाद दे मुझे दादी, यह दूध मेरा बिक जाए।"

बुढ़ियाकी बुझती आँखोंमें पानी छलछला आया। आकाशकी ओर देखकर बोली काँपते कण्ठसे, "हे नारायण स्वामी——" पता नहीं बुढ़ियाका आशीर्वाद क्या हुआ, दो घंटेमें सारा दूध बिक गया हनुमान्‌का।

तबसे फिर यही क्रम चलने लगा। हनुमान् तड़के-तड़के गांवोंसे दूध लाता, सेरपर दो पैसा नफा लेकर बेचता, नहाता-धोता, रामायणका पाठ करता, भोजन करता, मंदिर में जाता, रातको कथा सुनता, मांको आकर सुनाता और गाढ़ी नींद सो जाता।

इस तरह जब जिन्दगीका दरिया अबाधगतिसे बहता चला जा रहा था, एक दिन अचानक रातको मांने खुशी-खुशी सुनाया कि उसकी शादी ठहर रही है, यहीं, कस्बेकी एक लड़कीके रूप गुणकी प्रशंसा सुनी, फिर सुना कि पढ़ी-लिखी है, फिर सुना कि बाप नहीं है उसका, जल्दी ही शादी कर देना चाहती है उसकी मां। हनुमान् सब कुछ सुनकर चुप रहा। भगवान् जाने, उसे कैसा लगा। पर दूसरे दिन जब वह अपना दूध बेचकर वापस घर आनेकी तैयारी कर रहा था, एक आठ-नौ सालका छोकरा उसे एक चिट्ठी पकड़ा गया।

हनुमान्‌ने शांतभावसे वह चिट्ठी पढ़ी, चिट्ठी उसी लड़कीने लिखी थी, जिसके साथ उसकी शादी पक्की होरही थी। चिट्ठीमें उसने करुणापूर्ण शब्दोंमें अनुनय-विनय करके, पैरोंमें पड़कर लिखा था कि उसका किसी दूसरेसे प्रणय-बन्धन होचुका है। प्राणोंसे प्राण बँधगये हैं, हृदयमें हृदय समागया है। रक्षाकरो, मुझ अभागिनीपर दयाकरो, मैं जीवनभर तुम्हारी कृतज्ञ रहूँगी। मैं किसी दूसरेकी होचुकी हूँ। तुम इस शादीको रोक दो, नहीं मैं अपनी जान देदूंगी......

हनुमान् बहुत प्रयत्न करके उस लड़कीसे एकांतमें मिला। आंसू बहाती खड़ी थी दुखियारी कोनेमें, लाजसे भरी और चिन्ता-शोकमें डूबी।

हनुमान्ने स्नेहार्द्र होकर कहा, "तुम कुछ चिन्ता न करो मैं सब ठीक कर लूंगा। मैं कल ही सत्यप्रकाशके भाईसे मिलकर सब तय कर लूंगा। मैं भगवान्के आगे प्रण करके आया हूं। तुम अब दुख मत मानना। तुम्हें तुम्हारा सत्यप्रकाश मिल जाएगा। मैं भला तुम्हारे काबिल था? पढ़ा नहीं, लिखा नहीं, पैसा नहीं, गुण नहीं, तिसपर यह बेढङ्गी शक्ल, यह चेहरा, नाम हनुमान्।"

शान्ताने पलक मारते हनुमान्के पैर पकड़ लिए और पैरोंपर आंसू बहाती बोली कातरवाणीसे, "ऐसे मत कहो, इतनी निर्दय बात मत कहो, तुम मनुष्य नहीं हो, देवता हो, तुम देवता हो...।

हनुमान्ने उसे उठा लिया पैरोंसे, और भरे गलेसे कहा, "लेकिन एक शर्त है। मानोगी?

"मैं तुम्हारी हर शर्त मानूंगी।" वह आंसू बहाती हुई बोली।

"तो हरसाल रक्षा-बन्धनके दिन तुम्हें मेरे पास राखी भेजनी होगी। जहां कहीं रहो, जिस दिशामें रहो, राखी भेजना मेरे लिए। आजसे तुम मेरी बहिन हो। मै जिन्दगी भर बहनके प्यारके लिए प्यासा रहा हूं......"

शान्ता चीख मारकर हनुमान्के हृदयमें चिपट गई और "हाय भइया।" कहकर क्रन्दनकर उठी तो हनुमान्ने अपनी बलिष्ट भुजाओंमें लपेट लिया और आंसू न रोक सका फिर वह।

आखिर एक दिन सत्यप्रकाशके साथ शान्ताकी शादी होगई। हनुमान् सारी शक्ति से, पूरे तन-मनसे शादीमें लगा रहा। विदाकी वेला उसने अपनी शान्ता बहनको एक साड़ी भेंट दी। शान्ता उससे लिपटकर खूब रोई, हनुमान्भी रोया।

जिन्दगीका पहिया फिर उसीतरह घूमने लगा कि सारे देशमें, इस कोनेसे उसकोने तक, साम्प्रदायिक आग फैल गई। प्रतिदिन सैकड़ों और हजारों निरपराध स्त्री-पुरुषोंके प्राणोंकी आहुतियां दी जाने लगीं। इस जरासे कस्बेमें भी उस आंचकी लपट आई। मुसलमानोंके कुल तीन घर थे। तीनों गरीब थे और बिसाती थे। सारे दिन पेटी लादे पास-पड़ोसके गांवोंमें घूमते और अनाजके बदले शीशे, कंघा, साबुन, चूड़ियां, बिन्दी और बेल-बूंटे बेचते थे।

शामको मन्दिरके दरवाजेपर छः-सात नौजवान इकट्ठे होकर न जाने क्या बातें कर रहे थे। हनूमान्ने वहीं आकर जूते उतारे तो एकबोला धीरेसे कि इसेभी साथ लेलो. बड़ा बली है, एक हाथमें एक आदमीको साफकर देगा। दूसरा बोला कि नहीं जी, हम इसका

विश्वास नहीं कर सकते, समयपर दगा दे सकता है। हम इतनेही काफी हैं। कल सवेरे सब विधर्मियोंकी लाशें धूलमें लोटती होंगी और घरोंमें आग लगी होगी उनके...

हनुमान्‌ने जल्दी-जल्दी भगवान्‌को प्रणाम किया। पुजारी बोले. "बैठो भक्तराज, अभी पूजा-आरती होनेवाली है।"

पर हनुमान् न रुका। वह क्षमा मांगकर चल दिया भगवान्‌से और पुजारीसे। वह सीधा मुसलमानोंके यहां पहुँचा हांफता हुआ। दिनभरके थकेमांदे तीनों बिसाती बाहर बैठे हुक्का पी रहे थे। घरोंमें चूल्हे जल रहे थे और बच्चे आंगनमें शोर मचा रहे थे, हनुमान् विह्वल भावसे बोला, "जल्दी करो, मेरे घर चलो सब। अभी फौरन..."

...पिछवाड़ेकी गलीसे, चोरी छिपे। वे सब मुसलमान स्त्री-पुरुष, बच्चे हनुमान्‌के आँगनमें आ खड़े हुए सांस साधे, तो यह दृश्य देखकर मां भौंचक्की रह गई। हनुमान्‌ने उसके पैर पकड़कर भिक्षा मांगी शरणागतकेलिये, फिर वह अपनी लाठी लेकर मुसलमानोंके घर पर चढ़ गया और छातोंपर इधरसे उधर चक्कर काटने लगा। तभीवे लोग आगए। हनुमान् ने अँधेरेमें दूरसे पहँचान लिया हथियारोंसे लैस होकर वे लोग आरहे थे, विधर्मियोंका नाश करने। महावीर जैसे बलशाली हनुमान्‌ने कड़ककर कहा,"खबरदार, जो कोई आगे बढ़ा - किसीने आग लगाई यहां तो मैं उसका खून पी लूंगा। मैं भगवान्‌की शपथ खाकर कहता हूँ, आग लगानेवाला जिन्दा न लौटेगा यहांसे। बढ़ो आगे... ।"

वातावरण शांत हुआ तो गांवके बड़े-बूढ़ोंने आशीर्वाद दिया, पुजारी गद्-गद् हुए और मुसलमानोंके हृदय छीन लिए हनुमान्‌ने। आँखोंमें आँसू भर-भरकर कहते थे कि वह क्या हमारे तुम्हारे जैसा इन्सान है। वह तो पीर पैगम्बर है कोई।

क्वार आ गया। रामलीलाकी तैयारी हुई। तभी अचानक हनुमान्‌को यह हनुमान् की लीला करनेको मिली।

मुंशी महताबराय इस कस्बेकी शान थे। सिर्फ कलक्टरके पेशकार न थे, भगवान्‌के परम भक्त भी थे। इतने दरियादिल और इतने वसी कि लगता जैसे कोई समुद्र है जिसका आदि अन्त नहीं है। इनके कोई आस-औलाद न थी, सारे कस्बेको अपना करके मानते थे। जिलेमें पिछली साल जो कलक्टर आया था वह आइरिश था। भारतके प्रति, भारतीय संस्कृतिके प्रति उसे भारी आकर्षण था। मुंशीजीने उसे तुलसीदासकी वाणी सुना-सुना कर विभोरकर दिया। विह्वल था रामायणके कविपर और रामायण उसे प्रायः कंठस्थ-सी हो गई थी। मुंशीजीने अपने उस कलक्टरको निमन्त्रण दिया कि उनके कस्बेकी रामलीला एक दिन आकर जरूर देखें। साहबने भारी प्रसन्नतासे कहा कि जरूर आयेंगे एक दिन।

सो आ गए कलक्टर साहब कस्बेमें।

मुंशीजीको कस्बेकी आन रखनी थी। रामलीलाके सब अभिनेताओंको इकट्ठा

करके उन्होंने कहा कि आज अपनी जान लड़ा दो भाइयो, एक विदेशी आज तुम्हारी बस्तीमें आया है। अभिनयमें, लीलामें, आज अपना-अपना कलेजा निकाल कर रख देना लाड़लो। मेरी इज्जत रखना, कस्बेका नाम रखना धर्मकी मर्यादा बचाना, भगवान्‌को प्रसन्न करना, और क्या कहूं तुम सबसे...

हनुमान् स्तब्ध होकर सब सुन रहा था। मुंशीजीने हठात् उसकी ओर देखकर पुकारा, "हनुमान्।"

तो हनुमान्‌ने सीना उघार लिया अपना।

मुंशीजी बोले, "आज तुम्हारा पार्ट बहुत ज्यादा है। सावधान बेटा, हंसाई न हो।"

महावीर-जैसे बलशाली हनुमान्‌ने सीना उभारकर धीर-गम्भीर स्वरसे केवल कहा, "हंसाई नहीं होगी चाचा।"

मुंशीजी पीठ ठोककर चले गए।

ठीक समयपर लीला शुरू हो गई। कलक्टर जनताके बीचोबीच कुरसीपर बैठे थे। मुंशीजी बगलमें थे।

पहले तो मधुर स्वरवाले बालक रामायणकी चौपाई पढ़ते थे। तब पण्डित रामदीन खड़े होकर अर्थ सुनाते थे चौपाईका और फिर सामने मैदानमें अभिनेता लीला करते, सारे तन-मन और प्राणोंका बल लगाकर। कलक्टर मंत्रमुग्ध होकर बैठे थे।

सहसा उनकी नजर हनुमान्‌पर गई तो जैसे चौंक रहे। बाईं ओर जरा-सा झुककर मुंशीजीसे पूछने लगे, 'यह नकली चेहरा लगाए हुए है या मेकअप किया है इतना फाइन।"

मुंशीजीने जरा-सा हंसकर कहा, "नहीं हुजूर, नकली चेहरा नहीं लगाए है, न मेकअप किया गया है, उसका चेहरा ऐसा ही है और उसका नाम भी हनुमान् है।"

हनुमान्‌का विशाल शरीर, लम्बा-चौड़ा सीना, बड़े-बड़े हाथ-पैर और आगेको निकली हुई ठोढ़ी देख-देखकर साहबको बड़ा अचरज लगा और साहब प्रसन्न भी हुए।

लीला होरही थी। रावण सीताको हर लेगया। सीता लंकामें थी और सीताका समाचार लेने सुग्रीवके दूत समुद्रके किनारे एकत्र थे। संगी-साथी पवनसुतको समुद्रके उस पार भेजना चाह रहे थे और उनके बल-पराक्रमकी याद दिला रहे थे।

कस्बेके किनारे जो छोटी-सी नदी बहती थी, वह नदी इस समय समुद्र बन गई थी। नदीके उस पार लङ्का बनी थी। लंकामें सीताजी बैठी थीं और कस्बेकी सब औरतोंका जमघट वहींपर था।

इस पार सुग्रीवके दूत खड़े थे और बाकी दर्शक जनता थी चारों ओर। पवनसुत समुद्र उल्लंघनके हेतु उद्यत थे और नदीपर बांसोंके ऊपर तख्ते बिछाए जारहे थे कि उन्हींपर उछलते-कूदते हनुमान्‌जी समुद्र पारकर जाएंगे।

साहब थोड़े फासलेपर थे। जाने क्या ख्याल पैदा हुआ और उठकर वहाँ आ खड़े हुए, उसके बिलकुल नजदीक हनुमान्‌के आगे।

हनुमान्‌को रामायण बहुत-सी याद थी। वह बड़े प्रेमसे आँखें मूंदे चौपाई पढ़कर खुद ही अर्थ करनेलगा तो साहब बड़े प्रभावित हुए। सामने तख्ते बिछ रहे थे, जिनके सहारे समुद्र लंघन होना था। साहब नहीं समझे, मुंशीजीसे पूछने लगे, "यह किसलिए किया जा रहा है ?"

हनुमान्‌ने साहबका स्वर सुन आँखें खोललीं। मुंशीजीने बतलाया कि इसीके सहारे समुद्रपार होंगे पवन-सुत।

साहब तनिक हंसकर बोले, "लेकिन पवन-सुतने तो योंही समुद्रपार किया था।"

मुंशीजी मुस्कराकर रह गए। साहबने हनुमान्‌के बलिष्ठ शरीरपर एक नजर डालकर कहा, "तुम्हीं हनुमान् हो न ?"

हनुमान् साहबको प्रणाम करके बोला, "जी।"

"हनुमान्‌जी समुद्रको किसतरह पारकर गए थे, पढ़ा है न ?"

"जी," हाथ जोड़े हनुमान् बोले।

"और तुम छोटी-सी नदीको भी पार नहीं कर सकते ?" साहबने सरलतासे हंसकर पूछा, "कितना कूद सकते हो, हनुमान् ?"

हनुमान् हाथ जोड़े खड़ा रहा।

मुंशीजी और सारे अन्य अभिनेता चुप्पी साधे थे। साहबको जाने क्या हुआ चारों ओर भीड़पर एक नजर डाली और जाने कैसे भावावेशमें डूबकर कहा, "क्या इस बस्तीमें कोई ऐसा आदमी नहीं, जो इस नदीको कूद जाए ?"

सारी भीड़पर सन्नाटा-सा छा गया। साहबने यह कैसी बात कहदी। कस्बेका सम्पूर्ण जड़, चेतन, प्राण मानो स्तब्ध होगया। कहीं कोई आवाज नहीं। रस-भंग होने लगा, तब मानो साहबको सहसा ध्यान आया। सकुचाकर बोले, "आल राइट। चौपाई पढ़ो हनुमान्, बहुत अच्छा पढ़तेहो तुम।"

लीला फिर होने लगी। अन्तमें पवन-सुत चल दिए समुद्र-लंघन हेतु। हनुमान् ऊपरके मैदानसे नीचे उतरा। नदीके नजदीक पहुँचा। पर वह सामने बिछे तख्तेपर पैर न रखकर किनारे-किनारे जाने क्या ढूंढ़ता आगे बढ़ने लगा। छोटे-छोटे बालक उसके आगे-पीछे लगे थे। हनुमान् बढ़ता गया बच्चे भी साथ-साथ बढ़ते गए। तख्तेसे प्रायः बीस कदम और आगे जाकर सहसा हनुमान् रुक गया और स्थिर भावसे उस पार बनी लंका और लंकामें बैठी श्रीसीताजीकी ओर देखने लगा। उसने अपने हाथ जोड़ लिए। हाथ जोड़े-जोड़े फिर उसने बालकोंको इशारेसे इधर-उधर हो जानेकेलिए कहा और

हाथ जोड़े-जोड़े ही उलटे पैरों पीछेको हटने लगा। सब लोग स्तब्ध होकर देखते रहे कि यह क्या करने लगा हनुमान्। पर हनुमान् उसी तरह हाथ जोड़े उलटे पैरों पीछेको हटता गया, हटता गया। साहब लोग स्तब्ध होकर देखते रहे। सहसा हनुमान् रुका, हाथ उसी तरह लंका की ओर जुड़े हुए थे, उसने नयन मूंदे और मूंदे मूंदे ही वह अत्यन्त तीव्र वेगसे किनारेकी ओर दौड़ा, जैसे कोई तीर जाता है सरसराता हुआ।

और यह क्या हुआ?

सारी जनता और साहब और मुंशी सब कोई जैसे स्वप्न देख रहे हों, यह क्या हुआ?

हनुमान् उछला, उछलकर नदीके उस पार जा गिरा।

पलक मारते सब कुछ हो गया।

कितनी भयानक उछाल थी वह।

हनुमान् पूरी नदीको उछाल गया, उछलकर उस पार जा गिरा। गिरा लंकामें, जहाँ जगन्माता जानकी बैठी थीं। वहीं जाकर गिरा, जानकीके चरणोंमें।

कि इधरसे सारी जनता दौड़ी। हनुमान् नदी कूद गया। नदी फांद गया। अरे बाप रे, हनुमान् नदी कूद गया।

सारी औरतें हड़बड़ाकर खड़ी हो गईं। कोहराम-सा मच गया चारों ओर।

मुंशीजी दौड़कर आगे आए। चेहरा उनका जाने कैसा हो रहा था, दौड़े आकर गद्गद् होकर कहा, "हनुमान्, उठो बेटा।" पर हनुमान् न उठा।

साहब भी आ पहुंचे, साहबने क्षिप्रगतिसे नीचे बैठकर हनुमान्की छाती टटोली जल्दी-जल्दी। मुंशीजी पागलोंकी तरह साहबका मुँह देखते रहे। साहबने एक गहरी सांस ली और अपना हैट उतारकर खड़े हो गए। मुंशीजी भी उठकर खड़े हो गए। चारों ओर सन्नाटा छा गया। सामने हनुमान् पड़ा था, औंधे मुँह, जमीनमें सिर दिए।

तभी न जाने किधरसे सहसा हनुमान्की मां आ गई। वह हनुमान्से लिपट गई और और उसके मुँह पर मुँह रखकर करुण स्वरमें पुकार-पुकार कहने लगी, "उठो बेटा, तुमने मेरे दूध की लाज रखली, तुमने गाँवकी शान रखली, तुमने मुंशीजीकी इज्जत रख ली। अब उठो बेटा।"

पर हनुमान् न उठा।

मांने हनुमान्के मुँहपर मुँह रखकर रो-रोकर कहा, "अपनी मैयाका कहना सुनलो, उठकर खड़े हो जाओ, साहबको प्रणाम करो, मेरे गले लगो।"

पर हनुमान् न उठा। उसने मांकी कातर प्रार्थना न सुनी, उसने उठकर साहबको प्रणाम न किया।

वैशाख शुक्ला ५ जिनकी पुण्यजयन्ती है:—

हमारी सांस्कृतिक परम्पराके प्रमुख प्रहरी

आचार्य शंकर

—श्रीमती सरलारानी शर्मा, विदुषी

भारतीय संस्कृतिका स्वस्थ्य और सुसंस्कृत वर्तमान स्वरूप आचार्य शंकर द्वारा नियोजित हुआ है। उन्होंने भारतीय संस्कृतिको पुनः स्थापित किया और अपने ज्ञानके आलोकसे भारतकी भावात्मक एकताको अक्षुण्य बनाया। जब समस्त भारतवर्षको नहीं अपितु विश्वके अधिकांश भागमें बौद्ध धर्मकी दुन्दुभी बज रही थी और बौद्धधर्म अपने त्रिजातसे जनमानसमें शुष्कता उत्पन्न कर रहा था ऐसी दशामें मनुष्योंको बौद्धोंकी निरीश्वरवादितासे कोई शान्ति नहीं मिल पारही थी। उसी समय केरल देशमें पवित्रपूर्णा-नदीके किनारे काटली नामक ग्राममें भगवान् शंकराचार्यका प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने बौद्धोंके शून्यवाद और निरीश्वरवादका खण्डन कर वेदसम्मत धर्मकी प्रतिष्ठाकी। इनके पिताका नाम शिवगुरू था जो इन्हें तीन वर्षका छोड़कर शिवलोकवासी होगये थे। इनकी माताका नाम सुभद्रादेवी था। वृद्धावस्थामें भगवान् शंकरकी आराधनासे उनके वरदान स्वरूप यह सन्तान प्राप्त हुई थी। एक वर्षकी अवस्थामें मातृभाषाका स्पष्ट ज्ञान होगया था और दो तीन वर्षकी आयुमें ही मातासे सुने पुराण आदिकी कथाओंको कंठ कर लिया था।

पांच वर्षकी आयुमें उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। इसके बाद केवल दो वर्ष गुरूके पास रह कर वेदवेदान्त और दर्शन आदिकी शिक्षा प्राप्त करली। इतनीअल्प आयुमें सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंका ज्ञान होना वास्तवमें उनके दैवी गुणका द्योतक था इसीलिये उन्हें साक्षात् शंकरका अवतार माना गया हैं।

विश्वको प्रकाशित करने वाला सूर्य घरमें बन्दी होकर नहीं रह सकता। बालक शंकराचार्यने मातासे सन्यास लेनेकी आज्ञा मांगी। किन्तु वृद्धावस्थाकी इस इकलौती सन्तान को माता कैसे आज्ञा प्रदान करे। अतः माताने आज्ञा देनेसे मना कर दिया। दूसरे दिन

माता और पुत्र नदीमें स्नान करने गये, वहाँ शंकरका पैर एक मगरने पकड़ लिया। माता स्नान कर रही थी। बालक डूबता हुआ भी शान्त और स्थिर बना रहा। माता रोने और चिल्लाने लगी। डूबते बालकने माँसे शान्त स्वरमें कहा—'माँ, यदि आप मुझे सन्यास लेने की आज्ञा दे दें तो मगर मुझे छोड़ देगा।' माताने झट आज्ञा दे दी। पुत्रका जीवन यदि ऐसे ही बचता है तो ऐसा ही सही किन्तु माँने कहा, बेटा तू मेरी मृत्युके समय आजाना। मगर तो उनकी लीला मात्र थी। अतः मातासे आज्ञा मिलनेपर शंकराचार्यने नर्मदाके तट पर आकर स्वामी गोविन्दभगवतपादसे दीक्षा लेकर सन्यास ग्रहण किया। उस समय इनकी आयु केवल आठ वर्षकी थी। गुरुने इनका नाम भगवत्पूज्यपादाचार्य रखा वहाँ वे शीघ्र ही योगसिद्ध होगये। इसके बाद आचार्य शंकर काशीमें आये जहाँ भगवान् विश्वनाथने इनको चाण्डालके रूपमें दर्शन दिया। जब शंकराचार्यने उनको पहचानकर प्रणाम किया तो विश्वनाथ प्रकट होगये और उन्हें वरदान देकर चले गये।

इसके बाद आचार्यने ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखा जिससे अद्वैतवादका प्रतिपादन हुआ। उनके अद्वैतवादका देशपर बहुत प्रभाव पड़ा। बादके अनेक आचार्योंने भी ब्रह्मसूत्रपर भाष्य किये परन्तु उनकी बराबरीमें कोई भी नहीं टिक सका। उनकी सिद्धान्त स्थापन-प्रणाली विश्वके दार्शनिकोंमें अद्वितीय मानी जाती है।

ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखते समय एक दिन एक वृद्ध ब्राह्मणने एक सूत्रपर शंका प्रकट की। तब शास्त्रार्थ होने लगा और आठ दिन तक चला। शंकराचार्यके शिष्योंको इससे बहुत आश्चर्य हुआ। बादमें शंकराचार्यने व्यासजीको पहचाना और उनकी वन्दना की। शिष्योंने भी वेदव्यासजीको प्रणाम किया। व्यासजीने कहा—'मैं तुमपर प्रसन्न हूं' तुम्हारी आयु केवल सोलह वर्षकी है जो समाप्त होने वाली है। मैं तुम्हें सोलह वर्षकी आयु और देता हूँ। तुम सर्वत्र वैदिक धर्मकी प्रतिष्ठा करो।

व्यासजीके आदेशसे शंकराचार्यने वेदान्तमतका प्रचार एवं वैदिक धर्मकी प्रतिष्ठा की। शास्त्रार्थमें तार्किक और बौद्धोंको हराया। पूर्वसे पश्चिम तक उत्तरसे दक्षिण सभी जगह आपने वेदान्तकी शंखध्वनियाँकीं। सभीको पवित्र किया। बौद्ध विद्वान् मण्डनमिश्रकी पराजयने तो आचार्यकी प्रतिष्ठाको सर्वोपरि बना दिया। इस शास्त्रार्थमें मन्डनमिश्रकी पत्नी भारती मध्यस्थ हुई। मण्डनमिश्रने पराजय होनेपर आचार्यकी शिष्यता स्वीकारकी और उनका नाम सुरेश्वराचार्य हुआ, जो आचार्यके प्रधान शिष्योंमें से थे।

शंकराचार्यने अपने सिद्धान्तके प्रतिपादनमें अनेकों ग्रन्थोंके भाष्य लिखे। गीता तथा विष्णुसहस्रनामपर लिखा गया भाष्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। भक्तिपर अनेकों स्तोत्रोंकी रचना करके उन्होंने भक्ति एवं ज्ञानका समन्वय भी स्थापित किया। उनके ज्ञान और भक्ति परक सरल उपदेशोंने जनताको अपनी ओर खींच लिया। 'चर्पट मंजरी' और वाक्यपदीय उनके

दो लघु ग्रंथ इसके सुन्दर उदाहरण हैं। उपनिषदोंके दुरूह रहस्योंकी बोधगम्य विशद व्याख्या करके आचार्यशंकरने जन सुलभ सरल बनाने का पुनीत कार्य किया।

धर्मप्रचार एवं संगठनके पुनीत कार्यके साथ-साथ शंकराचार्यजीने पुरी, द्वारका, श्रृंगेरी और ज्योतिमठ स्थापित करके राष्ट्रको भावात्मक एकताके सूत्रमें बांध कर बहुत ही महान् कार्य किया। सम्पूर्ण राष्ट्रको चार भागोंमें विभाजित करके चार मठोंकी स्थापना उनकी दूरदर्शिताका परिचायक है। मठाधीशोंको निरन्तर अपने उत्तरदायित्वका भार वहन कर धर्म प्रचारका पवित्र कार्य निरन्तर करते रहना चाहिये ऐसी व्यवस्थाकी गई जो आज अक्षुण्य है। वैदिक धर्मकी सुरसरि जो उन्होंने प्रवाहित की उसका पुण्यलाभ जन-जनको सुलभ होसके, इसके लिये शंकराचार्यने सन्यासियोंको सम्बद्ध किया। सन्यासी सच्चे अर्थोंमें सच्चा धर्मोपदेशक हो सकता है, ऐसी उनकी मान्यता थी।

बत्तीस वर्षकी अल्पायुमें केदारनाथके समीप उन्होंने इहलोककी लीलाको छोड़ दिया और शिवलोकको प्राप्त किया। इतने अल्पजीवनमें आचार्यने जो कार्य किये वह उनकी असामान्य प्रतिभाके ही द्योतक हैं। अनेक ग्रन्थोंका निर्माण, अनेकों ग्रन्थोंका लिखना, धर्म प्रतिष्ठा और मठ स्थापन, उनके ठोस कार्य थे जो उन्हें सदा सर्वदाको अमर रखेंगे। अगर हम आज उनके पुनीत मार्गपर चलनेका व्रत लेकर आगे बढ़ें तो यह हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

जितना दीखता है, उतना तो आगे बढ़ो !

एक सीधे-सादे किसानने पहले-पहल लालटेन जलाकर दो मील दूर किसी गाँवमें जानेके लिए यात्रा आरम्भ की, परन्तु यह क्या ? वह चार कदम चलते-न-चलते रुक गया। किसी जानकार सज्जनने पूछा—'क्यों भाई ! रुक क्यों गये ?'

किसानने कहा— ज'ना है दो मील, मार्ग दीखता है दस गज तकका। कैसे पूरा पड़ेगा ?'

सज्जनने कहा—"जितना दीखता है उतना तो आगे बढ़ो ? । फिर इतनाही और आगे दीखने लगेगा।" और किसान अपने लक्ष्यपर पहुँच गया।

अपने विवेकके प्रकाशमें जितना सत्य दीखता हो, उसको आचरणमें लाओ, फिर परोक्ष सत्य भी प्रत्यक्ष हो जायेगा।

भट्टकविके 'भट्टिकाव्य' की सीता

—श्रीरञ्जन सूरिदेव

भट्टकविने श्रीधरसेन (द्वितीय) राजा द्वारा पालित 'वलभी' नामक नगरीमें रहकर 'भट्टिकाव्य' का निर्माण किया। इनका समय ईशाकी पाँचवींसे सातवीं शताब्दीतक माना जाता है।

अपांसुला महिलाओंमें धुरिकीर्त्तनीय भारतीयनारी देवी सीताकी महिमासे न केवल भारत वरन् समस्त विश्व प्रभावित है। भारतका तो सारा वाङ्मय ही सीतामय है। जब-जब भारतीय महिलाओंके सम्बन्धमें उनके उत्कर्षके निमित्त कोई चर्चा चलती है, तब-तब सहज ही सीताको आदर्शित किया जाता है। सीताकी गाथाका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि पौन: पुन्यरूपसे कही-सुनी जाने पर भी अनेक रसता तथा रमणीकता कभी क्षुण्य नहीं होती। सचमुच, सीताके चमत्कारपूर्ण चारित्र्यकी भारतके जन-जनमें शाश्वती प्रतिष्ठा है। ऐसी देवींके सम्बन्धमें, जितना भी कहाजायगा, नातिदीर्घ ही बना रहेगा।

मिथिलाधिपति राजा जनकने अपनी पुत्री सीता दाशरथि रामको देदी। वह सीता कितनीं सुन्दरी थी, इसका भावोन्मेपक चित्रण महावैयाकरण भट्टकविकी सशक्त भापामें देखिये—

'हिरण्मयी साललतेव जङ्गमा
च्युता दिवः स्थास्नुरिवाऽचिरप्रभा।
शशांक कान्तेरधिदेवताऽऽकृतिः
सुता ददे तस्य सुताय मैथिली॥'
(२।४७)

अर्थात् सीता सोनेकी जंगम साल-वृक्षलताके सदृश थी। आकाशसे गिरी हुई विजलीके समान थी। विजलीतो चंचल होती है और क्षण प्रभाभी; किन्तु सीता

कभी न मन्द पड़नेवाली और शाश्वत बिजली थी। इस प्रकार, तन्वी और तेजस्विनी उस सीताकी आकृति चन्द्रकान्तिकी अधिष्ठात्री देवीकी तरह सौम्य थी। यानी सीता सर्वजन-दर्शन मनोहरा और सातिशय रमणीया थी।

सीताके अपहरणके लिए रावण भिक्षु-वेश धारणकर दण्डकारण्यकी पर्णशालामें आता है और वह रामके बारेमें सीतासे जिज्ञासा करता है। सीताने अपने पतिका परिचय जिस शब्दावलीमें दिया है, उससे भारतीय सती नारीके आस्था और दृढ़तापूर्ण व्यक्तित्वका संकेत मिलता है—

'महाकुलीन ऐक्ष्वाके वंशे दाशरथिर्मम।
पितुः प्रियङ्करोभर्त्ता क्षेमकारस्तपस्विनाम्॥
निहन्ता वैरकाराणां सतां बहुकरः सदा।
पारश्वधिकरामस्य शक्तेरन्तकरो रणे॥
अध्वरेष्विष्टिनां पाता पूर्त्ती कर्मसु सर्वदा।
पितुर्नियोगाद्राजत्वं हित्वा योऽस्यागमद्वनम्॥
पतत्रिक्रोष्टु जुष्टानि रक्षांसि भयदे वने।
यस्य बाणनिकृत्तानि श्रेणीभूतानि शेरते॥
दीव्यमानं शितान् बाणानस्यमानं महागदाः।
निघ्नानं शात्रवान् रामं कथं त्वं नावगच्छसि॥' (५।७७-८१)

अर्थात्, दशरथके पुत्र मेरे पति इक्ष्वाकु-वंशमें उत्पन्न हैं, महाकुलीन हैं, अपने पिता के अनुकूलकारी और तपस्वियोंके क्षेमसाधक हैं। शत्रुओंके निहन्ता तथा सज्जनोंके कार्य बाहुल्य सम्पन्न करनेवाले हैं। मेरे पतिने ही प्रखर परशुरामकी शक्तिमदान्धताका विनाश किया था। यज्ञोंके रक्षक, समस्त कर्मोंके पूर्णकर्त्ता मेरे पति अपने पिताके आदेशसे राज्य छोड़कर जंगलमें आये हैं। इस भयंकर वनमें मेरे पतिके बाणोंसे बिंधे राक्षसोंकी कतारकी कतार पड़ी लाशें पक्षियों और शृङ्गालोंसे बराबर घिरी रहती हैं। इस प्रकार तीखे बाणों को चलानेवाले, विशाल गदासे प्रहार करनेवाले तथा निरन्तर शत्रुओंका सत्यानाश करने वाले मेरे पतिको तू कैसे नहीं जानता है?

यहाँ पतिव्रता सीताने रामके वैशिष्ट्य-वर्णनके छलसे अपने व्यक्तित्वकी विशालता और आशयकी उदारताका बड़ा ही पुष्ट परिचय प्रस्तुत किया है। अपने युद्ध वीर पतिके प्रति वह कितनी अगाध गौरव-गरिमा लिये हुए हैं, यह 'दाशरथिर्मम' से सहज ही अन्तर्ध्वनित होता है। पतिके प्रति स्वाभाविक विश्वास और अचल निष्ठावाली सीताने रामके परिचयको जिस निर्भीकतासे उपस्थित किया है, वह भारतीय संस्कृतिके प्रति आश्वस्त नारी का ही असली रूप है, जिसमें भारतीयताकी अखंडता अनादिकालसे स्वरूपित-सुरक्षित रहती

आई है और वह अनन्तकाल तक तद्वत् बनी रहेगी। सन्देह नहीं कि यहाँ सीता उस नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो अपने पतिके प्रति स्वकीयत्वको शेष रखकर भी समग्रता, यानी बहुजनहितकी दृष्टिसे अपने भावोंके सामान्यीकरण या उदात्तीकरणमें सात्त्विक गौरव-बोध करती है।

अशोकवनिकामें स्थित सीताको अन्वेषणशील हनुमान्ने जिस रूपमें देखा था, उसका एक चित्रः—

'वृक्षाद् वृक्षं परिक्रामन् रावणाद विभ्यतीं भृशम्।
शत्रोस्त्राणमपश्यन्तीमद्दश्यो जनकात्मजाम्॥
तां पराजयमानां स प्रीते रक्ष्यां दशाननात्।
अन्तर्दधानां रक्षोभ्यो मलिनां म्लानमूर्द्धजाम्॥
रामादधीतसन्देशो वायोर्जातश्च्युतस्मिताम्।
प्रभवन्तीमिवादित्यादपश्यत् कपिकुञ्जरः॥ (८।७०-७२)

अर्थात् एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर उछलते हुए हनुमान्ने सीताको देखा। वह सीता शत्रु रावणसे रक्षा न देखकर अत्यन्त त्रस्त होरही थी। रावणके बार-बार प्रीति-निवेदनसे उसका मन घृणाक्त होरहा था। राक्षसोंकी अनभीप्सित दृष्टि उस पर न पड़े, इसलिए वह मन-ही-मन अन्तर्हित हो रही थी। उसके सारे अंग मलिन पड़ गये थे और केशोंमें भी म्लानता आगई थी। रामका सदेश लिये हुए वायुपुत्र हनुमान्ने यद्यपि सीताके मुखमण्डल पर प्रफुल्लता नहीं देखी, तथापि उसे उसकी आकृति सूर्यकिरणोंसे बढ़ती हुई-सी प्रतीत हुई।

पति-वियोगके शोकसे सीताका बाह्यरूप धूमिल हो गया था सही; किन्तु उसका अन्तस्तेज अप्रतिहत था। रावणके अत्याचारकी पीड़ाग्निमें दग्ध उस साध्वीका नारीत्व तप्तकाञ्चनकी तरह दमक रहा था। दुष्ट दशाननके प्रपंचपूर्ण प्रलोभनके प्रभंजनमें उसका सतीत्व हिमशैलकी तरह अडिग था। यहाँ सीतामें भारतकी उस महीयसी महिलाका परिवेश चित्रित है, जो भौतिक प्रलोभनके कूलन्धय ज्वारमें बद्धमूल तटतरुकी तरह अपनेको निरस्तित्व होनेसे बचा लेती है, साथ ही 'मार' की दुलत्तियोंको कभी कारगर नहीं होने देती एवं उसके सामने रिरंसा बे-असर हो जाती है। एकमात्र पतिके प्रति एकतान उसकी कामना इतर समस्त सांसारिकताको निरन्तर अप्रभु बनाये रहती है। कहना न होगा कि सीता, शास्त्रोंमें वर्णित और लोकमें किंकथित समस्त नारीगत दुर्बलताओंके परिहार और प्रतिकारकी साक्षात् मूर्त्ति थी। यही कारण है कि भारत सीता-जैसी महिलापर अपनेको गर्वान्वित और धन्य समझता है।

अन्तमें राम रावणका वध करते हैं और विभीषणको राज्याभिषिक्त किया जाता है। हनुमान् सीताको शुभसन्देश देते हैं कि त्रैलोक्यकष्टक रावणका विनाश होगया और आपके दुर्दिनभी समाप्त होगये। सीता हनुमान्को उल्लसित आदेश देती है जाकर रामसे कहो कि वह हतभाग्या उनके दर्शनको उत्कंठित है। किन्तु जनापवादके भयसे रामने वैसा करना उचित नहीं समझा। उन्होंने विभीषणसे कहाकि सीताको अलंकृत कर यहाँ ले आइए।

विभीषणने सीतासे सादर मधुर शब्दोंमें कहा कि आप शोकका परित्याग करें और अपने मनको प्रीतिपूर्ण बनायें। रावणके प्रति आपका द्वेष अब नहीं रहना चाहिए। अशोक-वनिकाको छोड़कर अपने पति रामके पास चलें। चलनेके पूर्व मैं आपसे आग्रह करूंगा कि स्नान, पंचगव्य-पान, हवन आदि कार्य सम्पन्न करके आप अपनेको मालाओं और रत्नोंसे अलंकृत करें और अशोकवनिकामें रोक रखनेका क्षोभ मनमें न लाते हुए मेरी सुवर्णमयी शिविकासे प्रस्थान किया जाय। आपके पति रामका यही आदेश है।

सीताका नारी-हृदय धड़कउठा। उसे विभिषणकी बातें कुछ अटपटी अवश्य मालूम हुई किन्तु पतिकी आज्ञाका स्मरणकर यथादिष्ट रूपमें पति रामके पास पहुँची। पतिको देखते ही लज्जानत सीताकी, वियोग-दुखके स्मरणसे विह्वल आँखें निर्झरकी तरह झर-झर बहने लगीं।

निकटमें आई दीन सीताको देखकर रामका हृदय भीतर ही भीतर द्रवित होगया, किन्तु अपने हृदयको कठोर करते हुए उन्होंने कहा—'सीते! मुझे तुम्हारे चरित्रपर सन्देह है। 'रावणाङ्कपरिश्लिष्टा' तुम मेरे हृदयको दुखानेवाली बन गई हो। सुग्रीव, विभीषण, भरत या लक्ष्मण इनमें तुम जिसे चाहो, वरणकर सकती हो या तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, जा सकती हो; किन्तु रामको फिर पति रूपमें पानेकी आशा छोड़ दे।"[1]

रामकी इस निर्दय और अप्रत्याशित उक्तिसे पतिव्रता तपोमयी सीताकी अन्तरात्मा वज्राहत हो उठी। फिर भी, वह न्याय्य पथसे विचलित न हुई, वरन् अपने निर्मूल नारीत्व के अभिमानसे उद्दीप्त होकर कहने लगी—"हे काकुत्स्थ राम! मैं एक स्त्री हूँ, ऐसा सोचकर मेरे प्रति आपका शंकित होना व्यर्थ है। दैवके नामपर आपको भय खाना चाहिए। यहाँ इतने आदमी खड़े हैं, उनसे आपको लज्जा नहीं आती! मेरी विवशतासे लाभ उठाकर शत्रु मुझे हर ले आया तो फिर मेरे ऊपर आपका मिथ्याक्रोध व्यर्थ है। मेरा हृदय तो आपमें ही लीन था। राक्षस तो केवल मेरा शरीर हरकर यहाँ ले आया। देवता मेरी इस सत्यता के साक्षी हैं।"[2]

---

१. भट्टिकाव्य, सर्ग २०, श्लो० २१-२३।

२. उपरिवत्, श्लो० २६-२८।

इस प्रकार सीताने प्रत्येक देव-देवतासे प्रार्थना करते हुए अपने चारित्र्यकी शुद्धता का विश्वास दिलाया और कहा:—

रसान् संहर दीप्यस्व ध्वान्तं जहि नभो भ्रम।
इतीहमानस्तिग्मांशो वृत्तं ज्ञातुं घटस्व मे॥
स्वर्गे विद्यस्व भुव्यास्व भुजङ्गनिलये भव।
एवं वसन् ममाकाश सम्बुध्यस्व कृताकृतम्॥
चितां कुरुच सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम्।
रामस्तुष्यतु मे वाद्य पापां प्लुष्णातु वाऽनलः॥
(२०।३२-३४)

अर्थात् हे सूर्य ! रसोंका संहार करो। प्रचण्ड दीप्तिसे उद्भासित हो। अंधकारको हटाओ। आकाशमें परिभ्रमण करो। संसारके लिए चेष्टाशील तुम मेरे चरित्रको जाननेका प्रयत्न करो। हे आकाश ! मैं चाहे स्वर्गमें होऊं, धरतीपर होऊं, सर्वत्र मेरे कृत-अकृत कार्योंका साक्षी बनो। हे लक्ष्मण ! मेरे इस मिथ्याकलंककी एकमात्र दवा चिता तैयार करो। अग्निमें शुद्ध हुई मेरे प्रति राम संतुष्ट हों या अग्नि मुझ पापिनको जलाकर भस्म कर दे।

सीताके इस प्रकार आश्वस्त-विश्वस्त करनेपर भी मर्यादापुरुषोत्तम रामका निश्चय बदला नहीं। उनकी आज्ञासे लक्ष्मणने चिता प्रज्वलितकी सीता जलती चिताकी प्रदक्षिणा कर निर्भयभावसे उसपर चढ़ गई। उसीक्षण अग्निदेवने प्रत्यक्ष होकर सीताके चरित्रकी शुद्धताके प्रति रामको आश्वस्त किया, जिसका समर्थन ब्रह्मा, शिव आदि देवताओंने भी किया।

निस्सन्देह सीता जसी चरित्रवती भारतीय नारियां अपने चरित्रपर आंच आते देख अपनी जांच अग्निकी आंचपर स्वयं करती हैं। यही कारण है कि भारतीय नारियोंके चरित्रकी वरेण्यता इतिहास और पुराणोंद्वारा शतमुखसे प्रशंसित हैं। आइए, हम सीता-सदृश पवित्र नारी-आत्माके प्रति अपनी श्रद्धाके सुमन अर्पित करें।

एक व्यक्तिने मन्दिरके शिखरपर लगी हुई पताका दिखाते हुए कहा—'स्वामीजी, यह पताका हिल रही है या वायु ?'

'भाई, न पताका और न ही वायु ! तेरा दिमाग हिल रहा है'—स्वामीजीने कहा। मन यदि चंचल न हो तो वह व्यर्थकी कल्पना-जल्पनामें ही क्यों पड़ेगा।

श्रीमद्वल्लभाचार्यका जीवन-वैशिष्ट्य

श्रीनन्दलाल त्रिपाठी, साहित्याचार्य

जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीका प्राकट्य सं० १५३५ वैशाख कृष्णा ११ को हुआ था। आपने अल्पावस्थामें ही निखिल शास्त्रोंमें प्रवीणता प्राप्त करली, तथा संसारके जीवोंका उद्धार किया आप परमाराध्य परम कारुणिक श्रीनाथजीकी अनन्य सेवा करनेवाले, पुष्टि-भक्तिका प्रचार करनेवाले साक्षात् वैश्वानरावतार वन्दनीय आचार्य थे। आपने ब्रह्मसूत्रोंपर विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखा है। आप अद्भुत प्रतिभाशाली अलौकिक महापुरुष थे।

पुष्टिमार्गमें आप श्रीमहाप्रभुजीकी संज्ञासे प्रसिद्ध हैं। श्रीवल्लभाचार्यजीने व्यास-सूत्रोंका यथार्थ अर्थ प्रकट किया है आपने उन सूत्रोंका अर्थ करनेमें तनिक भी क्लिष्टकल्पना से काम नहीं लिया है; यही आपका सर्वमान्य वैशिष्ट्य है।

आपने वेद, सूत्र, पुराण, मीमांसादि धर्मशास्त्रोंका जो सार प्रकट किया है, वही पुष्टिमार्ग है।

आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके मुखावतार माने गये हैं। भूतलपर अवतार लेनेके पूर्व श्रीगोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णके समीप नित्यलीलामें विराजमान थे।

जगत्के जीवोंको दुखी देखकर भगवान्ने उनके उद्धारके लिए विचार किया कि जिस पुष्टिमार्गका प्रवर्तन श्रीगोपीजनोंने किया है वह मुझे अत्यन्त प्रिय है और वह कालान्तरसे अन्तर्हित हो गया है अतः उसको पुनः प्रकट करना आवश्यक है। यह विचारकर आपने अपने श्रीमुख स्वरूप श्रीवल्लभाचार्यजीको आज्ञा दी कि आप भूतलपर अवतार लेकर ब्रह्मवाद पुष्टिमार्गका प्रचार करो। भगवान्के आदेशानुसार विक्रम संवत् १५३५ वैशाख कृष्णा एकादशीके दिन श्रीलक्ष्मणभट्टजीकी धर्मपत्नी श्रीइल्लमागारुजीके गर्भसे चम्पारण्य नामक पवित्र क्षेत्रमें आपका प्राकट्य हुआ।

भगवदादेशानुसार अवतार धारणकर श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने सर्वोद्धारार्थ पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन किया।

पुष्टिमार्गमें द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) का तो उद्धार होता है, स्त्री-शूद्रादि का भी उद्धार पुष्टिमार्गमें सरलतासे प्राप्त है। इसीलिये गुसांईजी श्रीबिट्ठलनाथजीने लिखा है "स्त्रीशूद्राद्युद्धतिः क्षमः"।

घटसरस्वती नामका सन्यासी एक प्रभावशाली तान्त्रिक विद्वान् था। वह अपने पास एक अभिमन्त्रित घट रखता था। शास्त्रार्थके समय अपने और प्रतिपक्षीके बीचमें वह घट रखकर उसमें सरस्वतीका आवाहन करता जिससे वह घट बोलने लगता और प्रतिपक्षी परास्त हो जाता। श्रीमद्वल्लभाचार्यजी यात्रा करते हुए जब बुन्देलखंड पधारे, तब ओड़छा-नगरीके राजाको आपके पधारनेकी सूचना मिली और वह अपने अमात्यवर्गको साथ लेकर आचार्यचरणके पास आया और अपनी नगरीमें पधारनेकी प्रार्थनाकी। आचार्यचरणने राजाका आग्रह देखकर उसकी प्रार्थना स्वीकारकी। राजाने आपको बड़े उत्साह के साथ अपनी नगरीमें पधराया और आपका स्वागत किया। वहींपर घटसरस्वती भी मोजूद था उसके साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ। उसने अपने विषयके अनुसार घटको अभिमन्त्रित कर सामने रखा किन्तु आचार्यचरणके प्रभावसे घटमें से कोई शब्द नहीं निकला और घटसरस्वती परास्त होगया।

यह देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और आपके प्रभावसे प्रभावित होकर राजाने आपका कनकाभिषेक किया। आपके वैशिष्ट्यके विषयमें जितना भी लिखा जाय, कम ही है।

एक समय श्रीवल्लभाचार्यजी यात्रा करते हुये विद्यानगर पधारे वहाँका राजा कृष्णदेव बड़ा ही नीतिज्ञ धर्मात्मा एवं मर्मज्ञ विद्वान् था और शास्त्रचर्चा श्रवण करनेका व्यसनी था। कभी-कभी सभाका आयोजनकर विद्वानोंका शास्त्रार्थ करवाया करता था।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी जब पधारे उस समय एक विशाल सभाका आयोजन किया गया जिसमें देश-देशके उत्कृष्ट विद्वान् उपस्थित थे। उसी समय आपके पधारनेकी राजाको सूचना मिली। राजाने स्वयं आकर बड़े उत्साहके साथ विनम्रभावसे सभामें पधारनेके लिये प्रार्थनाकी। राजाका आग्रह देखकर शिष्य मण्डलीके साथ आप सभामें पधारे। आपके प्रभावको देखकर सभी सभासद उठ खड़े हुए और उच्चआसनपर आपको विराजमान किया। उससमय नास्तिकों और वेदवादियोंका परस्पर शास्त्रार्थ हो रहा था।

नास्तिकोंका प्रभाव बढ़ा देखकर आपसे चुप न रहा गया। आपने बोलना प्रारम्भ कर दिया और सब नास्तिकोंको परास्तकर दिया। आपने वेदका वास्तविक अर्थ करके

समझाया । राजा कृष्णदेव आपके अपूर्व पाण्डित्यसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ और आपका कनकाभिषेक करवाया तथा अभिषेकका सारा स्वर्ण और स्वर्णपात्र आपको भेंट किये । आपने सारा स्वर्ण एवम् स्वर्णके पात्र समागत विद्वानों तथा ब्राह्मणोंको बँटवा दिया । आपके इस अपूर्व त्यागसे राजा तथा सभी सभासद् लोग चकित हो गये । राजाने भक्ति-भावसे विनम्र होकर सेवक होनेकेलिए आपसे प्रार्थनाकी और आचार्यचरणने पात्र समझकर वैष्णवधर्मकी दीक्षा देकर राजाको सेवक बनाया । राजाने सहस्र स्वर्णमुद्रा स्वर्णके थालमें भरकर आपको भेंटकीं । उनमेंसे आपने श्रीनाथजीके नूपुर बनवानेके लिये केवल सात ही मुद्रा ग्रहणकीं । आपके इस अपूर्व त्यागसे राजा तथा सभी सभासद् जय-जयकार करने लगे ।

आपने अपना सारा माहात्म्य अपने वंशजोंमें स्थापित किया है, इसीलिये सर्वोत्तम स्तोत्रमें आपकानाम "स्ववंशेस्थापिताशेपस्वमाहात्म्यः" है । अर्थात् जो भी आपका माहात्म्य है वह सारा आपके वंशजोंमें स्थापित है ।

पूतना

नाक थी दरी-सी किंतु नाक-सुन्दरी-सी बनी
धाय-सी पिलाने लगी स्तन्य दैत्य-अरि को ,
कुच-कालकूट काल हो गया उसीका हरि—
पी गये सपय प्राण मरु जैसे सरि को ।
यक्षिणी जगन्य पर पुत्र भक्षिणी थी वह—
रूप पक्षिणीका थी पछाड़ देती करि को ,
जीवन अपूत कोई पूत ना तथापि हुआ—
पूत नाम पूतना का पूत बना हरि को ।।

दशावतारोंके साथ विकासवादका सम्बन्ध जोड़ना भ्रममात्र—

दशावतार-चर्चा

●

हमारे पुराणोंके अनुसार भगवान् विष्णुके प्रमुख दस अवतार हुए—मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि। कुछ आधुनिक विचारक इन अवतारोंको विकासवादका निचोड़ बताते हैं। उनके कथनानुसार 'जीवन जलसे शुरू हुआ और मछलीका जन्म हुआ। यह मत्स्य-अवतार है। फिर ऐसे प्राणीका विकास हुआ जो जल और स्थल दोनों स्थानोंमें रह सके। ऐसा जन्तु कछुआ उत्पन्न हुआ। यह कूर्म-अवतार था। फिर कछुएसे केवल धरतीमें बसनेवाले प्राणीका विकास हुआ। यह वराह-अवतार था। फिर ऐसे प्राणीका विकास हुआ जो गुफामें रहता था और पशु तथा मानव के बीचका प्राणी था। यह नृसिंह—(आधा मनुष्य आधा सिंह) अवतार था। तत्पश्चात् ऐसे प्राणीका जन्म हुआ जो पशु न होकर मानवके समान था। यह नाटेकदका मनुष्य वामन अवतार था। अब पहले पहल मानवका जन्म हुआ। इस मानवको प्राकृतिकबाधाओं तथा विकराल खूंखार पशुओंसे निरन्तर लड़ना पड़ा और धरतीको अपने रहनेके योग्य बनाना पड़ा। यह परशुराम-अवतार था। परशुरामने इक्कीसबार पृथ्वी विजय की थी। फिर दैवी गुणवाले सम्पूर्ण मानवका विकास हुआ। यह श्रीराम-अवतार था। अब परिवार बन चुके थे और मधुर-सम्बन्धोंका ताना-बाना बुना जाने लगा था। जीवन मधुमय हो चुका था और इस समयका दिव्य-मानव इसी मधुर युगका प्रतीक था। यह कृष्ण-अवतार था। बादके कालमें लोग कर्तव्याकर्तव्य भूल गये; अतएव दर्शन और चिन्तनका लाना अनिवार्य होगया, अतः भगवान् विष्णु अपने दार्शनिक तेजस्वी रूपमें फिर इस धरतीपर आये, यह बुद्ध अवतार था। इसके बादका कल्कि रूपतो अभी चल ही रहा है।

उपर्युक्त पंक्तियोंको उद्धृतकर विकासवादकी स्थापनाका श्रेय डारविन आदि विकास-वादियोंको न देकर भारतको ही इसका प्राथमिक गौरव प्रदान किया जाता है इसके सम्बन्ध

में हमारा विनम्र निवेदन है कि विकासवादका उक्त सिद्धान्त भारतवर्षकी प्राचीन वैदिक या पौराणिक विचारधाराको मान्य नहीं है। परमात्माने सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ब्रह्माको प्रकट किया —'हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे।' फिर ब्रह्माको वेदज्ञान प्रदान किया। तब वे पूर्वकल्पनानुसार सृष्टि रचनामें समर्थ हुए—'यथापूर्वमकल्पयत्।' ब्रह्माने संकल्पसे ही मानस पुत्रोंके रूपमें वशिष्ठ आदि ब्रह्मर्षि उत्पन्न किये। तत्वोंकी उत्पत्तिके क्रममें भी प्रकृतिसे महत्तत्व, उससे अहंकार और अहंकारसे मन सहित, इन्द्रियां दस इन्द्रियां और पञ्च तन्मात्राएं प्रकट हुई. इन पञ्च तन्मात्राओंसे आकाशादि क्रमसे पञ्च भूतोंका प्रादुर्भाव हुआ। श्रुति भी आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल तथा जलसे पृथिवीका प्राकट्य मानती है। 'ततो रात्र्य जायतो ततः समुद्रो अर्णवः' इस ऋग्वेदीय मन्त्रसे भी यही सूचित होता है दिन-रातका क्रम सूर्यके द्वारा चालू होजानेपर अर्णव समुद्रका प्राकट्य हुआ। जहां तक मत्स्यावतारका प्रश्न है, चन्द्रको प्रलयका दृश्य दिखानेके लिए भगवान्ने मत्स्यरूप ग्रहण किया था। आदि मानव मनु उस समय उत्पन्न थे। उन्हींको मत्स्यभगवान्ने जो उपदेश दिया, उसको मत्स्यपुराण कहा गया है। वाराहावतारमें भगवान्ने जलसे पृथिवीका उद्धार किया था। वहीं हिरण्याक्ष दैत्यका वध किया था। इससे पहले देवदानव सृष्टि हो चुकी थी। भगवान् स्वेच्छामय हैं, जब जैसी आवश्यकता समझते हैं, वैसा रूप ग्रहणकरते हैं, उसमें विकासका कोई क्रम निहित हो ऐसी बात नहीं है। श्रीराम और श्रीकृष्णसे बढ़कर पूर्ण मानवताकी प्रतिष्ठा कहां मिलेगी। गीताके गायकसे बढ़कर दार्शनिक चिंतनप्रद अवतार क्या होगा ? क्या बुद्धदेव, श्रीराम और श्रीकृष्णसे अधिक शक्तिशाली हुए ? यदि नहीं तो विकासवाद कहां गया? युगोंकी कल्पनाके अनुसार भी सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये उत्तरोत्तर अवनत युग हैं, कलिमें विवेक और सदाचारका ह्रास ही देखा जता है, उत्तरोत्तर विकास नहीं।

भगवान् कूर्मने समुद्र मन्थनमें सहायता देकर जगत्को अमृत तथा धन्वन्तरि दिया। भगवान् नृसिंहने अपने भक्त प्रह्लादकी यह बात कि 'परमात्मा सर्वत्र व्यापक है—' सत्य सिद्ध करनेकेलिये खम्भसे अपनेको प्रकट किया और हिरण्यकश्यप जैसे लोककण्टकको मिटानेके लिए वह अद्भुत रूप धारण किया। दैत्यराज वर पाकर उन्मत्त हो उठा था, भगवान्ने उसके अहंकारको चूर्ण कर दिया।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान : गतिविधियाँ

उमाशंकर दीक्षित एम० ए०

मथुरापुरी सदैवसे ही अपने धार्मिक एवम् सांस्कृतिक वैभवके लिये सुप्रसिद्ध रही है। इसने अपनी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक सम्पत्तियोंके द्वारा सदा सर्वदा सभीका मन मोहा है। परन्तु जबसे यहां भगवान् श्रीकृष्णकी पावन जन्मस्थलीके पुनरुद्धार एवं विकास का सेवा कार्य श्रीकृष्णजन्मस्थान-सेवासंघने अपने हाथोंमें उठाया है तबसे तो यह नगरी अपने प्राचीन वैभवकी सुनहली स्मृतियोंको साकार देखने लगी है। आकाशकी ओर बढ़ता हुआ 'भागवत-भवन' अपनी विशालता एवं कलात्मकताके लिये न केवल मथुराका ही गौरव होगा अपितु पूरे देशके लिये गरिमा-स्थल होगा। विश्वके सभी भागोंसे आनेवाले पर्यटक एवं दर्शनार्थी इसके 'माडिल' के द्वारा ही इसकी अद्भुतताका अनुभवकर प्रशंसा करते नहीं थकते। आधुनिक सुविधाओंकी साजसज्जासे युक्त संघ द्वारा निर्मित विशाल अन्तर्राष्ट्रीय अतिथिगृह जो अपने पूर्ण निर्माणके अन्तिम चरणपर है,भी इस नगरीके लिये गौरवकी वस्तु है। नवीनतम शैलीपर बना यह अथितिगृह वास्तवमें इसक्षेत्रकी अनुपम और अद्वितीय उपलब्धि है।

निर्माणके इन विशाल कार्योंके साथ ही साथ श्रीकृष्ण-जन्मस्थान धार्मिक एवम् सांस्कृतिक गतिविधियोंका भी केन्द्रविन्दु वन गया है। श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघका पावन रंगमञ्च यहाँके स्थानीय नागरिकों तथा बाहरसे आनेवाले भावुकजनोंकी ज्ञानपिपासा को शांत करके उन्हें स्वस्थ मनोरञ्जन प्रदान करता है। सांस्कृतिक एवं धार्मिक गतिविधियोंकी दृष्टिसे यह मच बड़ा ही लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। यहाँ आये दिन श्रीकृष्ण-लीलाओंके प्रदर्शनोंकी धूम मची रहती है।

नाट्य वैले सेण्टर दिल्लीका अभिनय

गत ५, ६ व ७ मार्चको श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके इसी पावन मंचसे दिल्लीके प्रसिद्ध 'नाट्य वैले सेन्टर' के कलाकारों द्वारा श्रीकृष्ण-लीलाओंके जो अभिनय प्रस्तुत किये गये उसकी स्मृति मात्रसे ही वे सभी अभिनय नेत्रोंके सामने साकार हो उठते हैं। कैसा अपूर्व

अभिनय था उनका ? 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' अतः वर्णन किया जाय तो कैसे किया जाय; वास्तवमें यह वर्णन करनेकी वस्तु नहीं, देखनेकी ही वस्तु थी। इस अभिनयको नित्य सहस्रों-सहस्रों व्यक्तियोने मन्त्रमुग्ध होकर-देखा और सराहना की। प्रतिदिन अभिनयका समय केवल ढाई घण्टे था। परन्तु ढाई घण्टेके इस अल्प समयमें ही भगवान्के इहलौकिक जीवनकी समस्त झाँकियाँ इस ढङ्गसे प्रस्तुतकी गईं थी कि दर्शकोंके सामने एक बार पुनः द्वापर युगका सम्पूर्ण इतिहास ही प्रत्यक्ष होगया था। जिसने इस अभिनयको देखा उसने भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस मूक अभिनयमें ध्वनिके साथ कलाकारोंकी अंग चेष्टायें दर्शकोंका मन हर लेती थीं। अभिनयके कथाभाग अधिकांशतः'कृष्णायन महाकाव्य'तथा सूरसाहित्य पर आधारित थे। इसमें स्वर द्वारा प्राण फूँकनेवाले पार्श्वगायक और गायिका थे, प्रसिद्ध संगीतकार श्रीअनिलविश्वास और उनकी पत्नी। वास्तवमें 'नाट्य वैले सेण्टर' की संचालिका श्रीमती कमलालाल और कलानिर्देशक श्रीभगवानदासजी वर्माके नेतृत्वमें हुआ यह अभिनय बहुत ही सफल रहा; जो मथुरावासियोंके लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

—×—

भगवान्की अपार कृपा

भगवान् श्रीकृष्णकी यह अपार कृपा है कि इन्होंने अपने संदेशके संपादनका भार मेरे दुर्बल कन्धोंपर रख दिया है। भगवान्की इस इच्छाको कौन टाल सकता है ? श्रीकृष्ण सर्वेश्वर हैं, सर्वशक्ति सिन्धु हैं और निर्बलके बल हैं। ये किसीको भी निमित्त बनाकर स्वयं ही सब कुछ करते हैं। मेरे अन्तःकरणने सुना है—'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।' अतः मैं भी अर्जुनके स्वरमें स्वर मिलाकर कहना चाहता हूँ— 'करिष्ये वचनं तव।' निभाना उनका कार्य है और उनकी प्रत्येक आज्ञाके समक्ष नतमस्तक होना अपना। वर्तमान अंक पाठकोंके सामने है। श्रीकृष्ण-संदेशको नई साजसज्जाके साथ सुन्दर सुरञ्जित रूपमें प्रकाशित करनेका हमारा प्रयास भविष्यमें निरन्तर जारी रहेगा। श्रीकृष्णका संकल्प तो पूर्ण होगा ही। यतः कृष्णस्ततोजयः।

—संपादक

नाट्य बैले सेन्टर, दिल्ली द्वारा प्रदर्शित कृष्ण-लीलाके कुछ दृश्य

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें गोपियां और ग्वाल-बाल नृत्य कर रहे हैं।
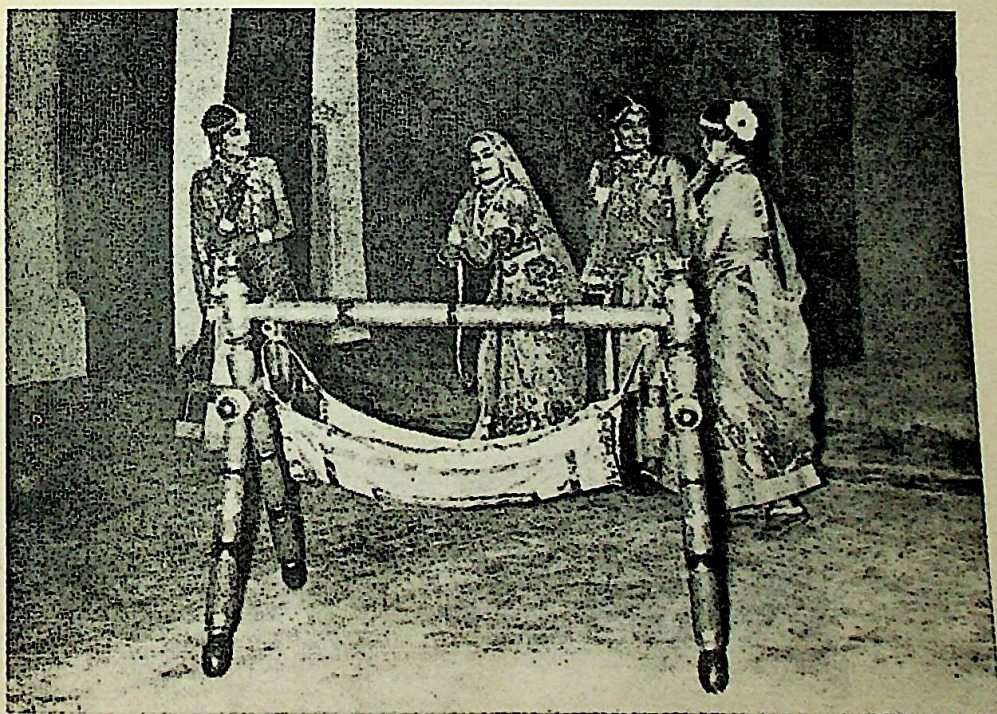
यशोदाजी और सखियां श्रीकृष्णको पालनेमें झुला रही हैं।

पंजीयत सं० एल-८२७

* कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् *

'श्रीकृष्ण-सन्देश'

के

ग्राहक

बनिए और बनाइए;

क्योंकि—

★ यह श्रीकृष्ण-प्रेमी जनताका अपना पत्र है,
★ श्रीकृष्णकी दिव्य लीला-गुण-कर्म एवं वाणीसे अभिप्रेरित है,
★ निष्पक्ष एवं प्रामाणिक पाठ्य-सामग्रीसे भरपूर है,
★ नैतिक बल, पवित्राचरण एवं स्वधर्म-निष्ठाको बढ़ानेवाला है।

यदि आप—

★ लेखक हैं तो प्रेरणादायक लेख भेजकर
★ कवि हैं, तो निष्ठा-वर्द्धक कवितायें लिखकर
★ अधिकारी या सेवक हैं, तो अपना सहयोग देकर
★ उद्योगपति या व्यापारी हैं, तो अपने संस्थानोंके विज्ञापन देकर

श्रीकृष्ण-सन्देशकी सफलता आपके सहयोगपर निर्भर है।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके लिये देवधर शर्मा द्वारा मथुरा प्रिंटिंग प्रेस, मथुरामें मुद्रित तथा प्रकाशित। आवरण मुद्रक : राधाप्रेस, गांधीनगर, दिल्ली-३१